
Registration No. V-36244/2008-09

ISSN :- 2395-0390

The journal has been listed in 'UGC Approved List of Journals' with Journal No. – 48402 in previous list of UGC

JIFE Impact Factor – 5.21

Varanasi Management Review

A Multidisciplinary Quarterly International Peer Reviewed Referred Research Journal

Editor in Chief

Dr. Alok Kumar

Associate Professor & Dean (R&D)
School of Management Sciences
Varanasi

Volume - XI

No. - 4

(Oct. – Dec.) 2025

(Part – IV)

Published by
Future Fact Society
Varanasi (U.P.) India

*Varanasi Management Review - A Multidisciplinary Quarterly International
Referred Research Journal, Published by : Quarterly*

Correspondence Address :

C 4/270, Chetganj

Varanasi, (U.P.)

Pin. - 221 010

Mobile No. :- 09336924396

Email- vnsmgrev@gmail.com

Note :-

The views expressed in the journal "Varanasi Management Review" are not necessarily the views of editorial board or publisher. Neither any member of the editorial board nor publisher can in anyway be held responsible for the views and authenticity of the articles, reports or research findings. All disputes are subject to Varanasi (Uttar Pradesh) Jurisdiction only.

Managing Editor
Avinash Kumar Gupta

©Publisher

ISSN : 2395-0390

Printed by

Interface Computer, B 31/13-6, Malviya Kunj, Lanka, Varanasi-221005 (U.P.)

ADVISORY BOARD

- **Prof. T. N. Singh**, School of Plant Sciences, Haramaya University, Ethiopia (Africa)
- **Prof. S.K. Bhatnagar**, School for Legal Studies, BBAU, Lucknow
- **Prof. (Dr.) Munna Singh**, Head of Department, Physical Education and Sports Sciences Department, Handia P.G. College, Handia, Prayagraj, U.P.
- **Dr. Saumya Singh**, Associate Professor, Department of Management Studies, Indian School of Mines, Dhanbad
- **Dr. Mrinalini Pandey**, Associate Professor, Department of Management Studies, Indian School of Mines, Dhanbad
- **Dr. Achchhe Lal Yadav**, Assistant Professor, Physical Education, Pt. D. D. U. Government Degree College, Saidpur, Ghazipur
- **Dr. Aditya Kumar Gupta**, Assistant Professor, School of Management Sciences, Varanasi
- **Dr. Abhishek Sharma**, Assistant Professor, Department of Hindi, Ravenshaw University, Cuttack
- **Dr. A. Shanker Prakash**, Assistant Professor, School of Management Sciences, Varanasi
- **Dr. Anil Pratap Giri**, Assistant Professor, Department of Sanskrit, Pondicherry Central University, Pondicherry.

EDITORIAL BOARD

- **Dr. Sanjay Singh**, Department of Plant Science, University of Gondar, Ethiopia (Africa)
- **Dr. Diwakar Pradhan**, Professor in Nepali, Head, Deptt. of Indian Languages Faculty of Arts, Banaras Hindu University, Varanasi
- **Dr. Nagendra Kumar Singh**, Professor, Department of Journalism & Mass Communication, Mahatma Gandhi Kashi Vidyapith, Varanasi.
- **Dr. Manish Arora**, Associate Professor, Faculty of Visual Arts, Banaras Hindu University, Varanasi
- **Dr. Surjoday Bhattacharya**, Assistant Professor, Government Degree College, Pratapgarh U P
- **Dr. Upasana Ray**, Associate Professor, National Council of Educational Research and Training, New Delhi
- **Dr. Krishna Kant Tripathi**, Assistant Professor, Deptt. of Education, Central University of Mijoram, Mijoram
- **Dr. Urjaswita Singh**, Assistant Professor, Department of Economics, M.G. Kashi Vidyapith, Varanasi.
- **Dr. Santosh Kumar Singh**, Assistant Professor, P.G. Department of Psychology, J.P. University. Chapra
- **Dr. Ramkirti Singh**, Assistant Professor, Department of Psychology, Gorakhpur University, Gorakhpur
- **Dr. Girish Kumar Tiwari**, Assistant Professor, National Council of Educational Research and Training, New Delhi

- **Dr. Ranjeet Kumar Ranjan**, Assistant Professor, Department of Psychology, J.P. College, Narayanpur, Bihar
- **Dr. Paromita Chaubey**, Faculty of Education, Banaras Hindu University, Varanasi





EDITOR'S NOTE

It is a great honour to me to extend my warm greetings and welcome you all to the journal, **Varanasi Management Review**, a refereed journal of multi disciplinary research. The journal, which is a peer-reviewed, will devote to the promotion of multi-disciplinary research and explorations to the South Asian and global community. It is our objective to provide a platform for the publication of new scholarly articles in the rapidly growing field of various disciplines. We are trying to encourage new research scholars and post graduate students by publishing their papers so that they may learn and participate in literary publishing through a professional internship. Scholarly and unpublished research articles, essays and interviews are invited from scholars, faculty researchers, writers, professors from all over the world.

Note: All outlook and perspectives articulated and revealed in our peer refereed journal are individual responsibility of the author concerned. Neither the editors nor publisher can be held responsible for them anyhow. Plagiarism will not be allowed at any level. All disputes are subject to Varanasi (Uttar Pradesh) Jurisdiction only.

Hoping all of you shall enjoy our endeavors and those of our contributors.

Editor



CONTENTS

"Varanasi Management Review"

➤	हिंदी कहानी की दशा और दिशाएँ बैजू कुमार राम डॉ. रामदुलार साहनी	01-09
➤	भारतेंदु-पूर्व हिंदी पत्रकारिता : हिंदी पत्रकारिता का आदिकाल मुकेश कुमार	10-16
➤	जयशंकर प्रसाद के नाटकों में युगबोध डॉ. आनंद कुमार गोंड	17-22
➤	ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्र के किशोर विद्यार्थियों में आत्मविश्वास एवं जीवन लक्ष्य निर्धारण का तुलनात्मक अध्ययन डॉ. अच्छे लाल यादव	23-28
➤	जमानिया विकास खंड में ग्रामीण विकास कार्यक्रमों के सामाजिक-आर्थिक प्रभावों का भौगोलिक अध्ययन डॉ. अभिषेक कुमार सिंह	29-32
➤	जनजागरण सम्बन्धित आधुनिक काव्यधारा में नागार्जुन का स्थान डॉ. संगीता कुमारी	33-38
➤	उत्तररामचरित में लोकमत लोकतन्त्र के परिप्रेक्ष्य में अनुज कुमार मिश्रा	39-42
➤	संस्कृतसाहित्ये जगन्नाथसंस्कृतेः अध्ययनम् राजलक्ष्मी वेहेरा	43-47
➤	खिलाड़ियों के आत्मविश्वास पर नियमित योगाभ्यास एवं प्राणायाम के प्रभाव का अध्ययन अभिषेक कुमार सिंह डॉ. ओमदेव सिंह गौतम	48-53
➤	पूर्वमध्यकालीन गंगा घाटी क्षेत्र में देवी उपासना ऋचा चौधरी डॉ. अंजना वर्मा	54-58
➤	जयप्रकाश नारायण की क्रांतिकारी भारतीय समाजवादी आंदोलन में भूमिका एवं योगदान डॉ. रत्ना कुमारी	59-62

हिंदी कहानी की दशा और दिशाएँ

बैजू कुमार राम*
डॉ. रामदुलार साहनी**

शोध-सार :

हिंदी कहानी की ऐतिहासिक यात्रा, उसकी वर्तमान दशा तथा भविष्यगत दिशाओं का समग्र अध्ययन प्रस्तुत करता है। हिंदी कहानी ने लोककथा और किस्सागोई की परंपरा से निकलकर प्रेमचंद के यथार्थवाद, नई कहानी आंदोलन की मनोवैज्ञानिक चेतना, समकालीन विमर्शों तथा डिजिटल युग की चुनौतियों तक एक लंबा और सशक्त विकास-क्रम तय किया है। यह शोध कार्य सामाजिक यथार्थ, स्त्री और दलित विमर्श, शिल्पगत प्रयोगधर्मिता, बाजारवाद तथा वैश्वीकरण के प्रभावों के संदर्भ में हिंदी कहानी की भूमिका और प्रासंगिकता का मूल्यांकन करता है। अध्ययन का उद्देश्य यह स्पष्ट करना है कि हिंदी कहानी किस प्रकार बदलते समय के साथ स्वयं को रूपांतरित करती हुई भी अपने मूल मानवीय और सामाजिक सरोकारों से जुड़ी रहती है। हिंदी कहानी पर अनेक अध्ययन उपलब्ध होने के बावजूद समकालीन संदर्भों में उसकी दशा और दिशाओं का समग्र मूल्यांकन अत्यंत आवश्यक है।

बीज शब्द : आदर्शवाद, यथार्थवाद, मनोवैज्ञानिकता, प्रयोगधर्मिता, गल्प, कायाकल्प और समकालीन विमर्श।

हिंदी साहित्य में कहानी एक सशक्त और जीवंत विधा के रूप में स्थापित है। यह विधा न केवल अपने समय के सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक यथार्थ को अभिव्यक्त करती है, बल्कि मनुष्य के आंतरिक संसार—उसकी संवेदनाओं, द्वंद्वों और आकांक्षाओं—को भी कलात्मक रूप में सामने लाती है। ‘हिंदी कहानी की दशा और दिशाएँ’ विषय वस्तुतः हिंदी कथा-साहित्य की वर्तमान स्थिति, उसकी उपलब्धियों, सीमाओं तथा भविष्य की संभावनाओं का सम्यक् मूल्यांकन है।

कहानी जीवन के निकटतम अनुभवों की विधा है। यही कारण है कि प्रत्येक युग की कहानी उस युग की चेतना, समस्याओं और वैचारिक संघर्षों की प्रतिनिधि बन जाती है। हिंदी कहानी ने अपने विकास-क्रम में आदर्शवाद, यथार्थवाद, मनोवैज्ञानिकता, प्रयोगधर्मिता और समकालीन विमर्शों के अनेक चरणों को पार किया है। आज की कहानी बहुस्तरीय यथार्थ, जटिल सामाजिक संरचनाओं और बदलते मानवीय संबंधों को नए शिल्प और भाषा में व्यक्त कर रही है।

हिन्दी कहानी की परिभाषा देते हुए डॉ. नामवर सिंह ने कहा है कि “कहानी छोटे मुँह बड़ी बात करती है।”¹ विभिन्न विद्वानों का कहानी की परिभाषा देते हुए अलग-अलग मत है। लेकिन उद्देश्य यही है कि वह समाज को प्रभावित करें। जैसे प्रेमचंद की कहानी कफन लोगों के अंदर संवेदना लाती है जो मुख्यधारा में शामिल नहीं है, उनके प्रति कहानी लोगों को जागरूक करती है। हिंदी कहानी का आधुनिक रूप उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध और बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में विकसित हुआ। इससे पूर्व हिंदी साहित्य में किस्से, दंतकथाएँ, लोककथाएँ और आख्यानात्मक रचनाएँ प्रचलित थीं, किंतु आधुनिक अर्थों में कहानी का स्वरूप गद्य के विकास, मुद्रण-प्रणाली और सामाजिक जागरण के साथ उभरा। भारतेंदु हरिश्चंद्र के युग में गद्य साहित्य का व्यवस्थित विकास हुआ, जिसने आगे चलकर कहानी विधा के लिए आधार तैयार किया। इस काल की रचनाओं में सुधारवादी चेतना, सामाजिक कुरीतियों का विरोध और नवजागरण की भावना प्रमुख थी। हालांकि इस दौर की कहानियाँ पूर्णतः परिपक्व नहीं थीं, फिर भी

* शोधार्थी (यूजीसी नेट), बाबासाहेब भीमराव अंबेडकर बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

** सहायक प्राध्यापक (शोध-निर्देशक), हिंदी विभाग, महिला महंत दास महाविद्यालय, मुजफ्फरपुर

उन्होंने आधुनिक हिंदी कहानी की नींव रखी। “ राजा शिवप्रसाद सितारेहिंद की लिखी बताई जानेवाली कहानी राजा भोज का सपना और भारतेन्दु हरिश्चंद्र लिखित समझी जानेवाली कहानी अद्भुत अपूर्व स्वप्न कथचित आधुनिकता के लक्षणों से सम्पन्न मानी जा सकती है।”² हिन्दी कहानी में आधुनिकता का स्पर्श आया हो परंतु वह पूर्ण नहीं हैं। उसमें प्राचीनता का मोह और नवीनता का ग्रहण की झलक भी दिखलाई पड़ती हैं।

प्रेमचंद पूर्व हिन्दी कहानी की दशा अपरिपक्व और अविकसित थी। इस समय कहानी श्रव्य परंपरा से टंकण यानि की लिखित स्वरूप धरण कर रही थी। कहानी के स्वरूप में मौलिकता थी परंतु कथानक, पात्र, और प्रभाव का सृजन करने का प्रयास इस काल में नहीं हुआ। कहानी में कथानक का बिखराव दिखता है। इस समय अधिकांश लेखक मनोरंजनपरक और रोमांच वाली कहानी लिख रहे थे। इस वजह से हिन्दी कहानी के कथानक में अलगाव जरूर स्पष्ट होता है।

पहली मौलिक कहानी खोजने के लिए विद्वानों ने काफ़ी शोध किया। ‘इन्दुमती’ को शेक्सपीयर के नाटक टेम्पेस्ट की छाया मानते हुए कई विद्वानों ने उसे मौलिक कहानी नहीं माना। बाद में देवीप्रसाद वर्मा ने सन् 1901 में ‘छत्तीसगढ़ मित्र’ पत्रिका में प्रकाशित माधव सप्रे की कहानी ‘एक टोकरी भर मिट्टी’ को हिन्दी की पहली मौलिक कहानी सिद्ध किया। यदि हम कहानी का इतिहास बहुत पीछे तक ले जाने के लिए अनावश्यक तर्क-वितर्क न करें, तो यह मानने में कोई हानि नहीं है कि हिन्दी कहानी की वास्तविक विकास-यात्रा ‘सरस्वती’ पत्रिका के प्रकाशन के साथ शुरू होती है। इसी पत्रिका के माध्यम से किशोरीलाल गोस्वामी, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, बंग महिला, वृन्दावनलाल वर्मा, चन्द्रधर शर्मा गुलेरी, विश्वम्भरनाथ शर्मा ‘कौशिक’ और प्रेमचंद जैसे महत्वपूर्ण कहानीकार सामने आए। गुलेरी जी की प्रसिद्ध कहानी ‘उसने कहा था’ सन् 1915 में और प्रेमचंद की ‘पंच परमेश्वर’ सन् 1916 में ‘सरस्वती’ पत्रिका में ही प्रकाशित हुई।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने ठीक ही लिखा है: “अंग्रेज़ी की मासिक पत्रिकाओं में जैसी छोटी-छोटी आख्यायिकाएं या कहानियां निकला करती हैं, वैसी कहानियों की रचना ‘गल्प’ के नाम से बंगभाषा में चल पड़ी थीं। ये कहानियां जीवन के बड़े मार्मिक और भावव्यंजक खंडचित्रों के रूप में होती थीं। द्वितीय उत्थान की सारी प्रवृत्तियों का आभास ले कर प्रकट होने वाली ‘सरस्वती’ पत्रिका में इस प्रकार की छोटी कहानियों के दर्शन होने लगे।”³

‘सरस्वती’ पत्रिका में प्रकाशित आरंभिक कहानियों तथा उससे पहले लिखी गई कहानियों को आरंभिक हिन्दी कहानी, प्राचीन हिन्दी कहानी या प्रेमचंद-पूर्व हिन्दी कहानी कहा जा सकता है। इस वर्ग में भारतेन्दु युग से पहले लिखी गई ‘प्रेमसागर’ (लल्लू लाल), ‘नासिकेतोपाख्यान’ (सदल मिश्र), ‘रानी केतकी की कहानी’ (सैय्यद इंशा अल्ला खाँ) तथा ‘सरस्वती’ के प्रारंभिक वर्षों में प्रकाशित कहानियाँ आती हैं। प्रेमचंद से पहले की इन कहानियों की अपरिपक्वता और शिल्पगत कमजोरी को देखते हुए कुछ विद्वानों ने इन्हें हिन्दी कहानी का बाल्यकाल या शैशवकाल कहा है।

प्रेमचंद-पूर्व हिन्दी कहानियों के कथानक सामान्यतः स्थूल, वर्णनात्मक और घटनाओं के चमत्कार पर आधारित होते हैं। यह प्रवृत्ति ‘प्रेमसागर’, ‘नासिकेतोपाख्यान’ और ‘रानी केतकी की कहानी’ में ही नहीं, बल्कि किशोरीलाल गोस्वामी की ‘इन्दुमती’ और आचार्य शुक्ल की ‘ग्यारह वर्ष का समय’ में भी दिखाई देती है। भगवानदास की ‘प्लेग की चुड़ैल’, केशवप्रसाद सिंह की ‘चन्द्रलोक की यात्रा’ और गिरिजादत्त वाजपेयी की ‘पति का पवित्र प्रेम’ जैसी कहानियों में वर्णन, आकस्मिक घटनाएँ और कुतूहल प्रधान हैं। भारतेन्दु युग की अनेक कहानियों में निबंधात्मकता, उपदेशात्मकता और अद्भुत रस का प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई देता है।

इस प्रकार भाषा, शिल्प, संवेदना, उद्देश्य और शैली—हर दृष्टि से देखने पर प्रारंभिक हिन्दी कहानियों में पर्याप्त कच्चापन नजर आता है। इन पर भारतीय प्राचीन कथा-साहित्य और लोककथाओं का गहरा प्रभाव पड़ा है। प्रेमचंद-युग और यथार्थवादी परंपरा

प्रेमचंद ने हिन्दी कहानी का कायाकल्प ही नहीं किया बल्कि उसकी कर्मभूमि भी बदल डाली। हिन्दी कहानी के वास्तविक विकास का आरंभ प्रेमचंद से माना जाता है। प्रेमचंद ने कहानी को कल्पनालोक से निकालकर ग्रामीण और निम्नवर्गीय जीवन की कठोर वास्तविकताओं से जोड़ा। उनकी कहानियों में किसान, मजदूर, स्त्री, दलित और शोषित वर्ग पहली बार साहित्य के केंद्र में आए। प्रेमचंद का यथार्थ केवल बाह्य घटनाओं का चित्रण नहीं था, बल्कि उसमें गहरी मानवीय संवेदना और नैतिक दृष्टि भी समाहित थी। 'कफन', 'पूँस की रात', 'सद्गति' जैसी कहानियाँ सामाजिक शोषण, गरीबी और अमानवीय व्यवस्था का मार्मिक चित्र प्रस्तुत करती हैं। इस युग में कहानी सामाजिक सुधार और मानवीय करुणा का माध्यम बनी। प्रेमचंद-युग की कहानी की दशा सुदृढ़ और उद्देश्यपूर्ण थी। इस दौर ने हिन्दी कहानी को जनजीवन से जोड़कर उसे व्यापक पाठक-वर्ग प्रदान किया।

प्रेमचंद के आगमन से हिन्दी कहानी को एक नई दिशा और नई दृष्टि मिली। यद्यपि वे सन् 1907 से उर्दू में कहानियाँ लिख रहे थे, लेकिन जब सन् 1916 में उनकी कहानी 'पंच परमेश्वर' 'सरस्वती' पत्रिका में प्रकाशित हुई, तभी से वे हिन्दी कथा-जगत के एक प्रमुख लेखक के रूप में पहचाने जाने लगे। इसी के साथ हिन्दी कहानी को भी एक नया मार्ग मिला। प्रेमचंद ने हिन्दी के पुराने कथा-शिल्प को तोड़कर उसे अपने समय के अनुसार नया रूप दिया। इससे पहले कहानियों में कुतूहल, रोमांच और मनोरंजन का ही अधिक महत्व था, लेकिन प्रेमचंद के बाद हिन्दी कहानी मनुष्य के वास्तविक जीवन से जुड़ गई।

प्रेमचंद ने पहली बार कहानी को मनोवैज्ञानिक विश्लेषण, जीवन के यथार्थ चित्रण और स्वाभाविक वर्णन से जोड़ा तथा कल्पना की अधिकता को कम करने पर जोर दिया। उन्होंने सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक यथार्थ को कहानी का केन्द्र बनाया। उन्होंने हिन्दी कथा-साहित्य से देवताओं, राजाओं और ईश्वर जैसे पात्रों को हटाकर गरीब, दलित, शोषित और पीड़ित मनुष्य को कहानी का नायक बनाया। यह उनका युगांतरकारी योगदान था। इसी कारण उनके समय को हिन्दी कथा-साहित्य में प्रेमचंद युग कहा जाता है। इसे हिन्दी कथा-साहित्य का वास्तविक विकास-युग भी कहा जा सकता है। इसी काल में कहानी को स्वतंत्र पहचान मिली और ऐसी अनेक कहानियाँ लिखी गईं, जो अन्य भाषाओं की श्रेष्ठ कहानियों के बराबर खड़ी हो सकती हैं। प्रेमचंद एक सजग और संवेदनशील कहानीकार थे। उन्होंने अपने समय और समाज को गहराई से समझकर अपनी कहानियों में प्रस्तुत किया। "सबसे उत्तम कहानी वह होती है जिसका आधार किसी मनोवैज्ञानिक सत्य पर हो।"⁴

प्रेमचंद-युग का साहित्य प्रथम विश्व युद्ध के बाद का साहित्य है। यह काल भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन का भी स्वर्णिम समय था। इसी समय स्वतंत्रता आंदोलन का नेतृत्व महात्मा गांधी के हाथों में आया। गांधी जी के सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक विचारों का उस समय के लेखकों पर गहरा प्रभाव पड़ा। गांधी जी के प्रभाव में प्रेमचंद ने प्रारंभ में आदर्शवादी और सुधारवादी कहानियाँ लिखीं। इन कहानियों में देशभक्ति के साथ-साथ आदर्श, नैतिकता, मर्यादा और कर्तव्य का भाव प्रमुख रूप से दिखाई देता है। 'सौत', 'पंच परमेश्वर', 'विचित्र होली', 'आहुति', 'जुलूस', 'सत्याग्रह', 'शतरंज के खिलाड़ी', 'नमक का दरोगा', 'बड़े घर की बेटी', 'अलग्गोझा' आदि कहानियाँ प्रेमचंद की इस कथा-प्रवृत्ति को समझने में सहायक हैं।

हिन्दी कहानी के विकास में प्रेमचंद की तरह जयशंकर प्रसाद का योगदान भी बहुत महत्वपूर्ण है। प्रसाद जी पहले कवि थे और बाद में कहानीकार बने। इसलिए उनकी कहानियों में भावनाएँ, कल्पना और काव्यात्मकता अधिक दिखाई देती है। उन्होंने अपनी कहानियों के माध्यम से भारतीय संस्कृति और इतिहास के गौरवपूर्ण प्रसंगों को सामने रखा। उनकी रचनाओं में देशप्रेम, आत्मसम्मान, आदर्श, प्रेम और कर्तव्य की भावना स्पष्ट रूप से झलकती है। अतीत के गौरव का चित्रण करके प्रसाद जी ने परोक्ष रूप से राष्ट्रीय स्वतंत्रता आंदोलन को भी बल दिया। इस दृष्टि से उनकी 'दिवरथ', 'सालवती', 'पुरस्कार', 'सिकन्दर की शपथ' और 'चित्तौड़ का उद्धार' जैसी कहानियाँ विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

प्रसाद जी ने इतिहास पर आधारित अनेक कहानियाँ लिखीं, जिनमें प्रेम की विभिन्न भावनाओं का सुंदर चित्रण मिलता है। जैसे— 'तानसेन', 'रसिया बालम', 'गुलाम', 'जहाँआरा', 'मदन-मृणालिनी' आदि। मूल रूप से प्रसाद जी प्रेम और सौन्दर्य के लेखक हैं। यह उनकी विशेषता भी है और कुछ हद तक उनकी सीमा भी। उनकी यह विशेषता उनकी कहानियों में स्पष्ट दिखाई देती है। उनकी प्रकृति अन्तर्मुखी थी, इसलिए उनकी अधिकतर कहानियों में व्यक्तिगत भावनाओं पर अधिक जोर मिलता है। फिर भी उनकी कई कहानियाँ ऐसी हैं, जिनमें सामाजिक और राजनीतिक समस्याओं को प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया गया है। प्रसाद की कहानियों के सौन्दर्य का विवेचन करते हुए डॉ० जगन्नाथप्रसाद शर्मा ने कहा है— "उनमें कहानी 'कला' की वस्तु बन गयी है— संवेदनशीलता के विचार से भी और रचनात्मक प्रक्रिया के आधार पर भी। जितने भी तत्त्व और अंग हैं कहानी के, उन सबका पूर्ण परिष्कार 'प्रसाद' में दिखाई पड़ता है। उन्होंने हृदय को झंकृत करने की चेष्टा अधिक की है; मस्तिष्क को उद्बुद्ध करने की ओर अधिक नहीं बढ़े और यही इनकी प्रकृति के सर्वथा अनुकूल भी था।"⁵

प्रेमचन्द-युग के अंतिम समय में ही हिन्दी कहानी की नई दिशा दिखाई देने लगी थी। प्रेमचन्द सुधारवादी युग के लेखक थे, इसलिए उनकी रचनाओं में अंत तक आदर्शवाद का प्रभाव बना रहा। वे समाज की वास्तविक समस्याएँ तो दिखाते थे, लेकिन उनका समाधान अधिकतर आदर्शों के माध्यम से करते थे। सुधारवादी युग के बाद संघर्ष और परिवर्तन का समय आया। इस दौर में कहानियों में मध्यवर्ग के जीवन और उसकी समस्याओं को प्रमुखता से प्रस्तुत किया जाने लगा। साहित्य में आदर्शवाद से आगे बढ़कर यथार्थ और वैज्ञानिक यथार्थवाद की ओर झुकाव हुआ। इन नए विचारों के साथ कहानी के क्षेत्र में कई नए लेखक सामने आए, जिनमें जैनेन्द्र, इलाचन्द्र जोशी, यशपाल, अज्ञेय और अशक प्रमुख हैं। प्रेमचन्द की बाद की कहानियों में भी विषय और लेखन शैली—दोनों में नई सोच दिखाई देती है। इसी कारण नई कहानी की शुरुआत को समझने के लिए हमें प्रेमचन्द की 'नशा', 'बड़े भाई साहब' और 'कफन' जैसी कहानियों को देखना पड़ता है।

इस विवेचन से स्पष्ट होता है कि लगभग सन् 1900 के आसपास हिंदी कहानी का जन्म हुआ और 1907 से 1918 के बीच वह पूरी तरह स्थापित हो गई। इसी समय हिंदी कहानी ने साहित्य में अपनी स्वतंत्र पहचान बनाई और उसका मौलिक रूप निखर कर सामने आया। किसी भी साहित्य विधा के विकास के लिए यह समय बहुत कम होता है, लेकिन भारतीय समाज में प्राचीन लघुकथाओं की परंपरा पहले से मौजूद थी। जब पाश्चात्य कहानी कला का प्रभाव पड़ा, तो वही संस्कार जाग उठा और हिंदी में कलात्मक कहानियाँ लिखी जाने लगीं।

इस क्षेत्र में प्रेमचंद और जयशंकर प्रसाद ने दो अलग-अलग प्रवृत्तियों का प्रतिनिधित्व किया। प्रेमचंद जीवन की वास्तविक समस्याओं और घटनाओं को लेकर आदर्श स्थापित करते थे। वे समाज के दुःख-दर्द, अन्याय, संघर्ष और सत्य की कहानियाँ लिखते थे। दूसरी ओर प्रसाद मनुष्य के मन के अंदर चलने वाले भावों और द्वंद्वों को व्यक्त करने में रुचि रखते थे और अक्सर अतीत की कल्पनात्मक दुनिया में रमते थे।

भाषा की दृष्टि से भी दोनों अलग थे। प्रेमचंद की भाषा सरल, बोलचाल की, मुहावरेदार और सजीव थी। इसके विपरीत प्रसाद की भाषा काव्यात्मक, अलंकृत और तत्सम शब्दों से भरपूर थी। इन दोनों लेखकों का अपने समय के साहित्यकारों पर गहरा प्रभाव पड़ा।

बाद में प्रसाद मुख्य रूप से काव्य और नाटक लेखन में लग गए, जबकि कहानी के क्षेत्र में प्रेमचंद का स्थान सबसे महत्वपूर्ण बना रहा। आगे चलकर हिंदी कहानी में जो भी नई प्रवृत्तियाँ विकसित हुईं, उनके मूल स्रोत इन्हीं दोनों लेखकों में मिलते हैं। व्यक्ति के मन और भावनाओं को केंद्र में रखकर लिखी जाने वाली कहानियों की परंपरा प्रसाद से और समाज के व्यापक हितों को ध्यान में रखकर लिखी जाने वाली कहानियों की परंपरा प्रेमचंद से शुरू हुई मानी जाती है।

स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कहानी:

स्वतंत्रता के बाद भारतीय समाज में तीव्र परिवर्तन हुए। राजनीतिक स्वतंत्रता के साथ सामाजिक और आर्थिक अपेक्षाएँ भी बढ़ीं, किंतु आम जनजीवन में निराशा, विस्थापन और मूल्य-संकट भी उभरे। इसका सीधा प्रभाव हिंदी कहानी पर पड़ा। इस काल में कहानीकारों ने स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद टूटते सपनों, शहरीकरण, मध्यवर्गीय जीवन की जटिलताओं और नैतिक संकटों को विषय बनाया। यहीं से हिंदी कहानी सामाजिक यथार्थ के साथ-साथ मनोवैज्ञानिक यथार्थ की ओर अग्रसर हुई। यह दौर हिंदी कहानी के लिए संक्रमणकाल सिद्ध हुआ।

छायावाद के बाद के समय में कविता और कहानी हिंदी साहित्य की सबसे महत्वपूर्ण विधाएँ बन गईं। इन्हीं दोनों को लेकर अनेक साहित्यिक आंदोलन हुए, गोष्ठियाँ हुई और पत्र-पत्रिकाओं के विशेष अंक प्रकाशित हुए। इसका मुख्य कारण यह था कि कविता और कहानी ने अपने समय की वास्तविक परिस्थितियों को गहराई से समझने और जीवन की जटिल समस्याओं को पूरी तरह व्यक्त करने का प्रयास किया।

नई कविता के प्रभाव से कहानी को भी “नई कहानी” कहा जाने लगा। इसके बाद सचेतन कहानी और “अ-कहानी” जैसे आंदोलन भी चले। छायावाद के बाद प्रारंभ में हिंदी कहानी में प्रगतिवादी (समाज सुधार पर जोर देने वाली) और व्यक्तिवादी (व्यक्ति के अनुभवों पर केंद्रित) प्रवृत्तियाँ दिखाई दीं। इसी समय आधुनिक चेतना भी उभरी। इसका उदाहरण भुवनेश्वर की ‘सूर्यपूजा’ और ‘भेड़िए’ जैसी कहानियाँ हैं, जिन्हें जैनेंद्र, अज्ञेय और इलाचंद्र जोशी ने आगे बढ़ाया। नामवर सिंह ने लिखा है “नयी कहानी नाम से कोई आन्दोलन अभी तक नहीं चला है। इससे क्या समझा जाय? यह कि कहानी में कुछ नयापन आया ही नहीं, कि कहानी में जो नयापन आया है, वह कविता की अपेक्षा बहुत कम है।”⁶

1950 के बाद की कहानियों में व्यक्ति के निजी जीवन और मानसिक समस्याओं पर अधिक ध्यान दिया जाने लगा। कुछ समय के लिए स्वतंत्रता प्राप्ति का उत्साह आंचलिक कहानियों में दिखाई दिया, लेकिन यह प्रवृत्ति अधिक समय तक नहीं चली। जल्दी ही स्वतंत्रता से मिलने वाले सुख का रोमांटिक भ्रम टूट गया और व्यक्ति अपने को अकेला और कटा हुआ महसूस करने लगा।

छठे दशक में जो तनाव और अलगाव दिखाई दिया, वह पूरी तरह मूल्यों से अलग नहीं था। लेकिन 1962 के भारत-चीन युद्ध ने लोगों को पूरी तरह मोहभंग की स्थिति में पहुँचा दिया। इसके बाद मार्क्स और फ्रायड के विचारों से आगे बढ़कर अस्तित्ववादी दर्शन का प्रभाव बढ़ा, जिसने जीवन के मूल प्रश्नों पर ध्यान केंद्रित किया। परिणामस्वरूप सातवें दशक की कहानियों में डर, अकेलापन, परायापन और ऊब जैसी भावनाओं को विषय बनाया गया और इन्हीं अनुभवों को केंद्र में रखकर कहानियाँ लिखी जाने लगीं।

इस प्रकार हिंदी कहानी की प्रारंभिक यात्रा लोककथा और सुधारवादी चेतना से निकलकर प्रेमचंद के यथार्थवाद और स्वातंत्र्योत्तर संक्रमण तक पहुँचती है। यह पृष्ठभूमि हिंदी कहानी की वर्तमान दशा और दिशाओं को समझने के लिए अनिवार्य है। नई कहानी आंदोलन, समकालीन विमर्श और डिजिटल युग में कहानी के बदलते स्वरूप का विस्तार से विवेचन किया जाएगा।

समकालीन हिंदी कहानी की दशा

आधुनिक सोच और चेतना को लेकर कहानी लिखने वाले लेखकों में रामकुमार, विजय चौहान और राजकमल चौधरी का नाम विशेष रूप से लिया जाता है। इन लेखकों ने कहानी की पुरानी बनावट को तोड़ दिया। पहले कहानियाँ पूरी घटनाओं और चरित्रों के क्रम से बनती थीं, लेकिन इन्होंने जीवन के छोटे-छोटे हिस्सों, जल्दी बदलते दृश्यों, छोटी घटनाओं और प्रतीकों के माध्यम से अपने समय के जीवन को दिखाया। उन्होंने किसी खास विचारधारा से बँधकर लिखने के बजाय स्वतंत्र होकर जीवन को व्यक्त करने की कोशिश की।

श्रीकांत वर्मा की कहानियों को मानसिक बेचैनी से भरी कहानियाँ कहा जा सकता है। उनकी कहानियाँ अक्सर प्रेम के आसपास घूमती हैं। उनकी रचनाओं में असमंजस, एकाग्रता की कमी और गहरी बेचैनी दिखाई देती है।

इसका अर्थ यह है कि वे न तो पूरी तरह रोमांटिक सोच छोड़ पाए और न ही उसे नकारकर पूरी तरह यथार्थ को स्वीकार कर सके।

सातवाँ दशक (1960 के बाद का समय) मोहभंग का दशक कहा जा सकता है। इस समय के कहानीकारों ने रोमांटिक सोच से हटकर नए यथार्थ को देखा और लिखा। मूल्यों के टूटने के साथ-साथ व्यक्ति का व्यक्तित्व भी बिखरने लगा। इसका सबसे बड़ा प्रभाव नेतृत्व और राजनीति में दिखाई दिया। मूल्यहीनता की चरम स्थिति कांग्रेस पार्टी के विभाजन में दिखाई पड़ी।

वैसे तो 1962 के चीन-भारत युद्ध के समय ही मोहभंग शुरू हो चुका था। यहीं से पुरानी पीढ़ी के प्रति नाराज़गी और विरोध की भावना बढ़ी। बुद्धिजीवियों की स्थिति और भी कठिन हो गई, क्योंकि उनकी बात सुनने वाला कोई नहीं था। पुरानी पीढ़ी से संवाद समाप्त हो गया। अकेलेपन और अपने ही समाज से कट जाने का भाव गहरा हो गया।

इस दौर की कहानियों में अकेलापन, निर्वासन और ऊब की भावना अधिक दिखाई देती है। अकेलेपन और निर्वासन में जहाँ गहराई और रचनात्मक सोच है, वहीं ऊब में अधिक टूटन और सतही विद्रोह दिखाई देता है। इस दशक के प्रमुख कहानीकारों में ज्ञानरंजन, दूधनाथ सिंह, गंगाप्रसाद विमल और काशीनाथ सिंह विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

आज की कहानियों में बदलते सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक और आर्थिक हालात की गहरी समझ बहुत कम दिखाई देती है। अधिकतर कहानियों में केवल व्यवस्था के खिलाफ गुस्सा नजर आता है, लेकिन उसका रचनात्मक उपयोग नहीं हो पा रहा है। यानी विरोध तो है, पर उससे कोई ठोस और सार्थक साहित्यिक दिशा नहीं बन रही।

आज उपभोक्तावादी संस्कृति जिस तरह मानवतावादी मूल्यों और भारतीय संस्कारों को बेरहमी से नष्ट कर रही है, उस पर बहुत कम कहानीकार गंभीर चिंता करते हैं। पहले प्रेमचंद, यशपाल और विष्णु प्रभाकर ने साहित्य को समाज की पीड़ा और संवेदनाओं से जोड़ने की परंपरा विकसित की थी, लेकिन अब वह परंपरा धीरे-धीरे कमजोर होती जा रही है।

इन कमियों के बावजूद एक सकारात्मक बात यह है कि प्रेमचंद से लेकर अज्ञेय तक की कहानी-परंपरा में सामाजिक जागरूकता, शिल्प की सुंदरता और नए रूपों की खोज की जो प्रक्रिया शुरू हुई थी, वह पूरी तरह समाप्त नहीं हुई है। आज भी लोकभाषा और लोकजीवन की भावनाओं के माध्यम से यह परंपरा किसी न किसी रूप में आगे बढ़ती दिखाई देती है। अर्थात्, भले ही आधुनिक कहानियों में कई कमजोरियाँ हों, फिर भी हिंदी कहानी की सामाजिक चेतना और रचनात्मक परंपरा पूरी तरह खत्म नहीं हुई है। कहानियों की बहुलता को लेकर प्रेमचंद ने 1932 में विष्णु प्रभाकर को लिखे एक पत्र में लिखा था “कार्यालय में गल्पें बहुत आती हैं, इससे कितने ही मित्रों की रचनाएं पड़ी रह जाती हैं।”⁷

राजकमल चौधरी की पहली हिंदी कहानी ‘सती धनुकाइन’ सन् 1958 में प्रकाशित हुई। इस समय तक ‘नयी कहानी’ आंदोलन धीरे-धीरे अपने अगले चरण में प्रवेश कर रहा था। हालांकि इससे पहले ही राजकमल चौधरी की मैथिली भाषा की कहानियाँ प्रसिद्ध हो चुकी थीं।

‘नयी कहानी’ की चर्चा करते समय प्रायः केवल तीन लेखकों—मोहन राकेश, राजेन्द्र यादव और कमलेश्वर—का ही नाम लिया जाता है। लेकिन सच यह है कि इस दौर के कई अन्य महत्वपूर्ण लेखक उपेक्षित रह गए। यह वह समय था जब साहित्यकार अलग-अलग गुटों और विचारधाराओं में बँटते जा रहे थे—कोई मार्क्सवादी था, कोई परिमलवादी और कोई ‘नयी कहानी’ त्रयी से जुड़ा हुआ। लेकिन इन सभी वादों, विवादों और समूहों से

अलग एक ऐसी भी शख्सियत थी, जो किसी गुट में बँधने के बजाय समाज की बुराइयों, विडंबनाओं और विसंगतियों पर सीधा और तीखा प्रहार कर रही थी। वह लेखक था राजकमल चौधरी।

राजकमल चौधरी ने स्वतंत्र होकर समाज की सच्चाइयों को उजागर किया और अपनी कहानियों में जीवन के कटु यथार्थ को निर्भीकता से प्रस्तुत किया।

बीसवीं शताब्दी के सातवें दशक में डॉ. महीप सिंह के नेतृत्व में सचेतन कहानी का आंदोलन प्रवर्तित हुआ। इन कहानीकारों में जीवन दृष्टि को या विचारधारा के प्रति कोई सामूहिक प्रतिबद्धता नहीं इसीलिए कहानीकार व्यक्तित्व स्वतंत्र और विशिष्ट है। "1964 ई० में 'आधार' पत्रिका के 'सचेतन कहानी विशेषांक' के प्रकाशन से इसका आरम्भ माना जा सकता है। सचेतन कहानी के आधार को स्पष्ट करते हुए महीप सिंह ने कहा-"नयी कहानी के अन्दर जो अन्तर्विरोध थे, उन्हें स्पष्ट करने के लिए और जीवन के प्रति जो सचेतन दृष्टि हम चाहते थे, जिसमें हम यह अनुभव करते थे कि जीवन को मात्र प्रदत्त वस्तु के स्तर पर नहीं जीना चाहिए, बल्कि सक्रियता से भोगना और जीना - आज के मनुष्य की नियति है, उसे अपनी रचनाओं के माध्यम से हम रेखांकित करना चाहते थे। हमारे इस आग्रह को सचेतन कहानी का आधार माना गया और लोगों ने इसे उसी रूप में अपनाया।"⁸

"महीप सिंह ने 'सचेतन कहानी' की व्याख्या में 'नयी कहानी' की निषेधात्मक प्रवृत्तियों का विरोध करते हुए जीवन को सकारात्मक सचेत भाव से जानने और जीने पर बल दिया। इस दृष्टि को हम उनकी कहानियों में परिलक्षित होते देख सकते हैं। वर्तमान कालावधि में प्रकाशित 'धूप की उंगलियों के निशान' (1993), 'सहमे हुए' (1998), 'दिल्ली कहां है' (2002), 'ऐसा ही है' (2002) कहानी-संग्रहों की कहानियों से उनकी सचेतन दृष्टि प्रमाणित होती है। वे सचेत भाव से अपनी कहानियों में अपना समय जी रहे हैं। उदाहरण के लिए जैसे-जैसे स्वाधीन भारत आगे बढ़ रहा है, वैसे-वैसे हमारे जीवन में सांप्रदायिकता और धार्मिक कट्टरता और विद्वेष बढ़ता जा रहा है। इसे उनकी 'एक मरता हुआ दिन' (1985), 'दिल्ली कहां है' (1985), 'आओ हंसे' (1986), 'पहले जैसे दिन' (1989), 'शहर' (1991) आदि कहानियां बड़ी संवेदनशीलता के साथ व्यक्त करती हैं, लेकिन ये कहानियां सामयिक मात्र नहीं हैं, इनमें शाश्वत मानवीय सरोकार भी हैं। उनकी कहानियों में शिल्पगत चमत्कार प्रायः नहीं है। उन्होंने सहजता की विशिष्टता को साधा है।"⁹

डॉ. नगेन्द्र के अनुसार "जगदीश चतुर्वेदी अकहानी आंदोलन में सम्मिलित ही नहीं हुए, बल्कि उसके पुरोधा भी रहे।"¹⁰ उनकी कहानी की मूल वस्तु स्त्री-पुरुष लालसा, संभोग और प्रतारणा है। उनकी कहानियों की मूल वस्तु स्त्री-पुरुष की संसर्गजनित लालसा, संभोग और प्रतारणा है। उनकी 'अंधेरे का आदमी' (1978), 'विवर्त' (1981), 'आदिम गंध' (1995), 'डेलिया के फूल' (1995) आदि संग्रहों की अधिकांश कहानियां इसका प्रमाण हैं। अनुभव की यथार्थता के कारण सरल कथाशिल्प के बावजूद उनकी कहानियां हमें प्रभावित करती हैं। गंगाप्रसाद विमल भी 'अकहानी' के पुरोधा रहे हैं किंतु उनकी 'खोयी हुई बाती' (1995) आदि संग्रहों की कहानियां अस्तित्ववादीबोध के ज़्यादा निकट हैं। योगेश गुप्त की 'उन दो शहरों की तरह' (1982), 'कैमरे के गर्भ से' (1982), 'परास्वप्न' (1988), 'मेरे अंतरिक्ष' (1988), 'ओल्मा' (1992) आदि संग्रहों में संगृहीत कहानियां उनके व्यक्तित्व की तरह हो अनूठी हैं- लीक से एकदम हट कर। इसीलिए वे हिंदी-कहानीकारों की मुख्यधारा में कभी पूरी तरह सम्मिलित नहीं हो पाये। उनकी कहानियों में दलित-शोषित की पक्षधरता भी है और घोर व्यक्तिवादी अस्तित्ववादिता भी। दूधनाथ सिंह भी 'अकहानी' आंदोलन के पक्षधर के रूप में उभर कर सामने आये। इस कालावधि में उनके कई कहानी-संग्रह प्रकाशित हुए हैं : 'माई का शोकगीत' (1992), 'नमो अंधकार' (1998), 'धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे' (2002), 'निष्कासन' (2002) आदि।¹¹

'अकहानी' आंदोलन के शिथिल पड़ते-पड़ते कमलेश्वर 'समांतर कहानी' (1972) का आंदोलन ले कर सामने आ गये। 1977 में 'जनवादी विचारमंच' की स्थापना हुई और जनवादी कहानी की चर्चा होने लगी। 1979 में राकेश वत्स ने 'सक्रिय कहानी' का आंदोलन अपनी पत्रिका 'मंच' के माध्यम से चलाया। इसके बाद हिंदी में कोई आंदोलन नहीं चला। इन आंदोलनों से पूर्ववर्ती आंदोलनों में सम्मिलित कहानीकारों के अतिरिक्त अनेक नये कहानीकार भी सामने आये, जिनमें से रमेश उपाध्याय 'पैदल अंधेरे में' (1981), 'बदलाव के पहले' (1981), 'राष्ट्रीय राजमार्ग' (1984), 'किसी देश के शहर में' (1987), 'कहां हो प्यारेलाल' (1991), 'अर्थतंत्र तथा अन्य कहानियाँ' (1996) आदि संग्रहों की कहानियों के माध्यम से विशेष रूप से सक्रिय रहे हैं। वे चाहे किसी भी आंदोलन में सम्मिलित रहे हों, लेकिन उनकी निष्ठा जनवादी ही रही है। उनके अतिरिक्त इन आंदोलनों के माध्यम से जितेंद्र भाटिया, दामोदर सदन, सुदीप, हेतु भारद्वाज, असगर वजाहत, धीरेंद्र अस्थान, उदयप्रकाश आदि अनेक कहानीकार उभर कर सामने आये और इनमें से कुछ वर्तमान कालावधि में कहानी रचना में रत रहे। इनमें से 'दरियाई घोड़ा' (1982), 'तिरिछ' (1990), 'और अंत में प्रार्थना' (1996), 'पॉल गोमरा का स्कूटर' (1997), 'पोली छतरी वाली लड़की' (2001), 'दत्तात्रेय का दुःख' (2002) आदि।¹²

यदि इन सभी साहित्यिक आंदोलनों को एक साथ देखा जाए, तो स्पष्ट होता है कि इनके पीछे जीवन की परिस्थितियों में आए वास्तविक बदलाव से अधिक लेखकों की व्यक्तिगत महत्वाकांक्षा काम कर रही थी। कथ्य और शिल्प में जरूरी परिवर्तन की अपेक्षा, आंदोलन चलाने वालों का उद्देश्य अधिक था। फिर भी इतना सच है कि इन आंदोलनों के कारण कहानी साहित्य जीवंत बना रहा और वह एक ही ढर्रे पर चलने से बच गया।

यदि 1955 से लेकर आज तक के हिंदी कहानी साहित्य के विकास को आंदोलनों से अलग करके देखा जाए, तो उसमें तीन मुख्य चरण दिखाई देते हैं।

1955 से 1965 तक इस समय रचनाकारों ने जीवन की समस्याओं को व्यक्तिगत और आत्मीय दृष्टि से देखा। उन्होंने अपने स्वयं के अनुभवों और भोगे हुए यथार्थ को अधिक महत्व दिया। कहानियाँ उन्हीं जीवन स्थितियों पर आधारित थीं, जिन्हें लेखक ने खुद महसूस किया था। इस दौर की कहानियों में अनुभव की सच्चाई और भावनात्मक गहराई प्रमुख थी।

1965 से 1980 तक इस काल में पहले से बनी हुई रूढ़ियों और बाहर से आए विचारों का विरोध किया गया। लेखकों ने मूल्यों को जीवन की व्यापक परिस्थितियों से जोड़ने का प्रयास किया। यह कोशिश की गई कि रचनाएँ अपनी जमीन से जुड़ी हों और विश्वसनीय बनें। इस दौर में सामाजिक यथार्थ को अधिक व्यापक रूप में देखने की प्रवृत्ति बढ़ी।

1980 से आज तक इस समय कहानियों में वस्तुनिष्ठ (निष्पक्ष) विश्लेषण की प्रवृत्ति बढ़ी। रचनाओं को वैचारिक रूप से अधिक समृद्ध किया गया। कला को बनावटीपन से बचाकर सरल और स्वाभाविक बनाने का प्रयास हुआ। जीवन की समस्याओं और वास्तविक परिस्थितियों से सीधे टकराने वाली कहानियाँ लिखी जाने लगीं।

समग्र रूप से देखा जाए, तो उपन्यास की तुलना में हिंदी कहानी साहित्य अधिक जीवंत, प्रभावशाली और प्रेरणादायक दिखाई देता है। कहानी ने समय के साथ अपने रूप और विषयों में परिवर्तन किया है और समाज की सच्चाइयों को अधिक गहराई से प्रस्तुत किया है।

समकालीन संदर्भ और सामाजिक परिवेश

समकालीन हिन्दी कहानी अपने युग की सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक और आर्थिक परिस्थितियों की सजीव अभिव्यक्ति है। आज की कहानी केवल कल्पना या मनोरंजन तक सीमित नहीं है, बल्कि वह समाज में घट रही वास्तविक घटनाओं, समस्याओं और मानवीय संवेदनाओं को गहराई से प्रस्तुत करती है। बदलते समय के साथ मनुष्य

का जीवन, उसकी सोच और उसकी चुनौतियाँ भी बदल रही हैं, और समकालीन हिन्दी कहानी इन्हीं परिवर्तनों को अपने कथ्य का आधार बनाती है।

वर्तमान सामाजिक परिवेश पर वैश्वीकरण, उदारीकरण और उपभोक्तावादी संस्कृति का गहरा प्रभाव पड़ा है। इसने जीवन-शैली को सुविधापरक बना दिया है, पर साथ ही मानवीय संबंधों में दूरी और स्वार्थ को भी बढ़ाया है। परिवारों का विघटन, पीढ़ियों के बीच बढ़ता अंतर, प्रेम और विश्वास की कमी जैसे विषय आज की कहानियों में प्रमुखता से दिखाई देते हैं। व्यक्ति अब भीड़ में रहते हुए भी अकेला अनुभव करता है। यही अकेलापन और असुरक्षा समकालीन कहानी का एक महत्वपूर्ण विषय बन गया है।

संदर्भ सूची –

1. त्रिपाठी, विश्वनाथ, हिन्दी साहित्य का सरल इतिहास, ओरीयंट ब्लैकस्वॉन प्राइवेट लिमिटेड, हैदराबाद, प्रथम संस्करण 2007, पुनर्मुद्रण 2021, पृष्ठ संख्या 97
2. द्विवेदी, हजारीप्रसाद, हिन्दी साहित्य उद्भव और विकास, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, 21 वाँ संस्करण 2017, पृष्ठ संख्या 222-223
3. संपादक डॉ. नगेन्द्र व हरदयाल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, नेशनल पेपर, मयूर बुक्स, दिल्ली, 59 संस्करण, पृष्ठ संख्या 463
4. तिवारी, डॉ रामचन्द्र, हिन्दी गद्य साहित्य का इतिहास, विश्वविद्यालय प्रकाशन इलाहाबाद, 14 वाँ संस्करण 2022, पृष्ठ संख्या 382
5. तिवारी, डॉ रामचन्द्र, हिन्दी गद्य साहित्य का इतिहास, विश्वविद्यालय प्रकाशन इलाहाबाद, 14 वाँ संस्करण 2022, पृष्ठ संख्या-- 748
6. सिंह, डॉ. नामवर, कहानी : नई कहानी, लोकभरती प्रकाशन इलाहाबाद, संस्करण 2009, पृष्ठ संख्या 54
7. संपादक डॉ. नगेन्द्र व हरदयाल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, नेशनल पेपर, मयूर बुक्स, दिल्ली, 59 संस्करण, पृष्ठ संख्या- 743
8. तिवारी, डॉ रामचन्द्र, हिन्दी गद्य साहित्य का इतिहास, विश्वविद्यालय प्रकाशन इलाहाबाद, 14 वाँ संस्करण 2022, पृष्ठ संख्या 394
9. संपादक डॉ. नगेन्द्र व हरदयाल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, नेशनल पेपर, मयूर बुक्स, दिल्ली, 59 संस्करण, पृष्ठ संख्या-748
10. वही पृष्ठ संख्या -749
11. वही
12. वही



भारतेंदु-पूर्व हिंदी पत्रकारिता : हिंदी पत्रकारिता का आदिकाल

मुकेश कुमार*

आज का दौर पत्रकारिता का दौर है। आज के युग को अगर हम पत्रकारिता का युग कहें, तो इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। पत्रकारिता के मूल में जिज्ञासा है। जिज्ञासा यानी जानने की इच्छा। हम जानना चाहते हैं। जिन पड़ोसियों से हम रोज मिलते हैं, जिन दोस्तों से हमारी रोज मुलाकात होती है, उनसे जब भी मिलते हैं या उनसे बात करते हैं तो हमारा पहला प्रश्न होता है—क्या हाल-चाल है? या, आप कैसे हैं? क्या समाचार है? अगर ध्यान नहीं दीजिए तो इन साधारण सवालों में कोई खास बात नजर नहीं आएगी, लेकिन गौर से सोचिए तो पाइएगा कि इन सवालों में नया समाचार जानने की इच्छा छुपी हुई है। हम अपने पड़ोसियों, दोस्तों, रिश्तेदारों, सहकर्मियों—सबसे हमेशा उनके आस-पास की घटनाओं की नई से नई जानकारी लेना चाहते हैं। इंसान में जिज्ञासा का भाव जन्म से होता है। यही जिज्ञासा—भाव पत्रकारिता के मूल में है। पत्रकारिता का विकास इंसान की इसी जिज्ञासा को शांत करने के लिए हुआ है। जब कोई घटना होती है तो उसको लेकर हमारे मन में मोटे तौर पर छः तरह के सवाल उठते हैं। पहला सवाल उठता है कि क्या घटना हुई है? फिर, यह कि घटना कहाँ हुई? फिर, घटना कब हुई? फिर, कौन लोग उससे जुड़े हैं? घटना क्यों हुई और कैसे हुई? इन छः सवालों की शुरुआत 'क' अक्षर से हुई है, इसलिए पत्रकारिता को तकनीकी शब्दावली में 'छः ककार' कहते हैं।

अंग्रेजी में इसे ही 'फाईव डब्ल्यू एंड वन एच' कहा जाता है। 'फाईव डब्ल्यू' का मतलब है—व्हॉट, व्हेयर, व्हेन, हू, व्हाय एवं 'एच' का मतलब है—हाउ। आज हर जगह पत्रकारिता की पहुँच है। जीवन के हर क्षेत्र में पत्रकारिता की उपस्थिति एक ऐसी शक्ति के रूप में दिखाई देती है जो लोगों के विचारों को प्रभावित करती है, उन्हें आंदोलित करती है, बदलती है, बनाती या बिगाड़ती है। समाज का क्षेत्र हो या धर्म—संस्कृति का क्षेत्र हो, राजनीति हो, खेल हो, सिनेमा हो, साहित्य हो, व्यापार हो, शिक्षा हो, अंडरवर्ल्ड हो, घपले—घोटाले हों, हत्या—नरसंहार हो—सब की सच्चाई पत्रकारिता हमारे सामने लाती है और सीधे तौर पर हमारी भावनाओं और विचारों को प्रभावित करती है। आदत ऐसी हो गई है कि अगर एक दिन हम अखबार न पढ़ें या न्यूज चैनल न देखें तो सूना—सूना—सा लगता है। आज दुनियाभर में अधिकतर लोग अपने धार्मिक ग्रंथों को भले न पढ़ें लेकिन समाचार सुने बगैर वे नहीं रह सकते। शायर शहजाद अहमद ने एक शेर में कहा है—

दस बजे रात को सो जाते हैं खबरें सुनकर

आँख खुलती है तो अखबार तलब करते हैं।

आज पत्रकारिता का काफी विकास हो गया है। फलस्वरूप उसके कई प्रकार आज देखने को मिलते हैं। मसलन—खोजी पत्रकारिता, पीत पत्रकारिता या पेज थ्री पत्रकारिता। इसी तरह और भी कई प्रकार हैं—खेल पत्रकारिता, महिला पत्रकारिता, बाल पत्रकारिता, आर्थिक पत्रकारिता, कृषि पत्रकारिता, रेडियो पत्रकारिता, टीवी पत्रकारिता, इंटरनेट पत्रकारिता, संसदीय पत्रकारिता, फोटो पत्रकारिता, विज्ञान पत्रकारिता, साहित्यिक पत्रकारिता, शैक्षिक पत्रकारिता, अपराध पत्रकारिता, राजनीतिक पत्रकारिता। इन प्रकारों को देखकर यह अंदाजा लगाना आसान है कि आज पत्रकारिता का कितना विकास हो गया है।

समाचार को अंग्रेजी में 'न्यूज' कहा जाता है। 'न्यूज' शब्द अंग्रेजी के चार अक्षरों से बना है। ये चार अक्षर हैं—एन, ई, डब्ल्यू एवं एस। एन यानी नॉर्थ, ई यानी ईस्ट, डब्ल्यू यानी वेस्ट और एस यानी साउथ। इसका मतलब है कि न्यूज से हमें चारों दिशाओं में होने वाली गतिविधियों और घटनाओं का पता चलता है। लेकिन आज की पत्रकारिता कितनी व्यापक हो गई है, इसका पता इस बात से चलता है कि अब खबरों में ऐसी घटनाएँ भी शामिल होती हैं जो आकाश और पाताल में घटित होती हैं। आज की पत्रकारिता हमें यह भी बताती है कि आकाश में कौन—सा उल्का पिंड किस दिन, किस वक्त, कहाँ से गुजरेगा, उससे कौन—सी घटना—दुर्घटना हो सकती है? कौन—सा ग्रह, कौन—सा नक्षत्र, कौन—सा पिंड, कब—कहाँ—कैसे—क्यों हरकत करेगा? आज की पत्रकारिता हमें यह भी बताती है कि पृथ्वी के अंदर किस प्रकार की हलचल हो रही है?

* शोधार्थी, विश्वविद्यालय हिंदी विभाग, बी. आर. ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर।

पृथ्वी के नीचे के प्लेट कहाँ आपस में टकरा रही हैं और उनसे किस तीव्रता का भूकंप आने की आशंका है? इन बातों का मतलब यह है कि आज पत्रकारिता का दायरा चार दिशाओं तक सीमित नहीं है।

लोकतंत्र के चार स्तंभ माने गए हैं—न्यायपालिका, कार्यपालिका, विधायिका एवं प्रेस। अगर इनमें से कोई भी स्तंभ कमजोर हुआ तो लोकतंत्र भी कमजोर हो जायेगा और अगर लोकतंत्र कमजोर हुआ तो पहले वह 'लोकतंत्र' में बदलता है और फिर उसे 'शोकतंत्र' में बदलते देर नहीं लगती। कहने का आशय यह है कि एक कमजोर लोकतंत्र में नियम, कानून और संविधान—जैसी चीजें मजाक बनकर रह जाती हैं। ऐसी स्थिति में लाचार और बेचारी जनता को अन्याय और दुःख सहन करना पड़ता है। लोकतंत्र उसके लिए 'शोकतंत्र' में बदल जाता है। ऐसा न हो, इसकी जिम्मेदारी पत्रकारिता के कंधों पर होती है। अगर पत्रकारिता जिम्मेदारी और ईमानदारी से अपना कार्य करती है तो लोकतंत्र हमेशा मजबूत होता है। मजबूत मीडिया किसी सत्ता की नाइसाफी के सामने आँखें तरेर कर खड़ा हो सकता है, भले ही वह सत्ता कितनी भी बड़ी तोप क्यों न हो? मीडिया की इसी ताकत की ओर इशारा करते हुए उर्दू के एक मशहूर शायर अकबर इलाहाबादी ने कहा था—

खींचो न कमानों को न तलवार निकालो

जब तोप मुकाबिल हो तो अखबार निकालो।

अगर पत्रकारिता लोकतंत्र का चौथा खंभा है तो उसका नैतिक दायित्व है कि बाकी के तीन स्तंभों पर नजर रखे एवं उनके कार्यों का मूल्यांकन करे और जरूरी होने पर उनके कार्यों की आलोचना भी करे।

हिंदी पत्रकारिता का स्वरूप आज अत्यंत व्यापक और विकसित हो गया है। किंतु अपने उद्भव काल तथा आरंभिक चरणों में इसे भीषण संघर्ष और चुनौतियों का सामना करना पड़ा है। औपनिवेशिक शासन के दबाव और दमन, समाज के लोगों के द्वारा उत्पन्न बाधाएँ, पाठकों की उदासीनता, आर्थिक समस्या और तकनीकी चुनौतियाँ—ऐसी अनेक समस्याएँ रहीं, जिनसे अपने आरंभिक चरणों में हिंदी पत्रकारिता को जूझना पड़ा। आज इस वृक्ष की व्यापकता को देखकर इसकी शाखाओं—उपशाखाओं के विस्तारों को लक्षित कर इस बात का अंदाजा लगाना मुश्किल है कि अपने आरंभिक काल में इसकी जड़ पर कैसे आघात हुए और उस पर किस तरह मट्टा डालने का प्रयास किया गया। यद्यपि यह बात निःसंदेह कही जा सकती है कि बाहरी कठिनाइयों के बावजूद हिंदी पत्रकारिता अपने आरंभिक काल से ही अपनी आत्मा में मानवीय मूल्यों और नैतिक आदर्शों के दीप जलाए रही। आघातों और तूफानों ने अनेक बार इसे डिगाया, किंतु इसके भीतर की ज्योति हमेशा अडिग रही जिसमें उसकी दृष्टि जनकल्याण और मानवहित के पथ पर सदैव एकाग्र रही।

भारतीय नवजागरण की सफलता और भारतीय स्वतंत्रता की प्राप्ति में हिंदी पत्रकारिता का योगदान अविस्मरणीय है। भारतीय नवजागरण—काल में हिंदी पत्रकारिता ने समाज की संरचना के कारकों को—यानी उसकी भाषा, संस्कृति, धर्म, विश्वास, कला, साहित्य आदि को— सामाजिक उपयोगिता की कसौटी पर परखने का प्रयास किया जिससे नवजागरण की प्रक्रिया सहज संभव हो सकी। इस दौरान हिंदी पत्रकारिता सामाजिक रूढ़ियों की आलोचना करती रही जिससे न केवल भारतीय एकता को बल मिला, बल्कि आधुनिक भारत के निर्माण में सहायता प्राप्त हुई। इसके अलावा यह एक सर्वमान्य तथ्य है कि स्वतंत्रता आंदोलन में हिंदी पत्रकारिता की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण रही है।

हिंदी पत्रकारिता का इतिहास लगभग दो सौ वर्षों का है। इस इतिहास को बेहतर ढंग से समझने के लिए उसे अनेक चरणों में विभाजित किया गया है। युग बदलने से, सामाजिक परिवर्तन से, वैचारिक और राजनीतिक बदलावों से चेतना बदलती रहती है। एक काल—खंड की चेतना दूसरे काल—खंड में बदल जाती है। प्रत्येक काल—खंड में एक ऐसी चेतना या प्रवृत्ति होती है जो पूरे काल—खंड को प्रभावित करती है। यद्यपि उसमें अन्य प्रवृत्तियाँ भी होती हैं। विकास के चरणों का निर्धारण और काल—खंडों का नामकरण उन्हें प्रभावित करने वाली चेतना के आधार पर किया जाता है।

भारतेंदु का स्थान हिंदी पत्रकारिता के क्षेत्र में अन्यतम है। उन्होंने हिंदी के प्रत्येक अभाव को दूर करने की भरपूर चेष्टा की। 'कविवचन सुधा' के प्रकाशन से प्रारंभ हुए उनके पत्रकारिता—काल में हिंदी भाषा का रूप स्थिर और परिमार्जित हुआ, जागरण और सुधार की भावना का प्रसार हुआ तथा अनेक वर्णों और धर्मों में विभाजित भारतवासियों ने अपने जाति—वर्ण के उत्थान के लिए जातीय और धार्मिक पत्र—पत्रिकाओं का प्रकाशन आरंभ किया। क्रमशः पत्र—पत्रिकाओं में गंभीर लेख निकलने लगे और कुछ शुद्ध साहित्यिक पत्रिकाओं का प्रकाशन भी हुआ। इनके माध्यम से राष्ट्रीय चेतना भी अधिक प्रखर रूप में सामने आयी।

लेकिन, पत्रकारिता—संबंधी उपरिलिखित कुछ सामान्य विशेषताओं और तथ्यों को प्रस्तुत करने के पश्चात्, प्रस्तुत आलेख में हम हिंदी पत्रकारिता के आदिकाल अर्थात् भारतेंदु—पूर्व हिंदी पत्रकारिता से संबद्ध

कतिपय महत्त्वपूर्ण बिंदुओं तथा उस दौरान प्रकाशित कुछ प्रमुख पत्र-पत्रिकाओं का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत करने का प्रयास करेंगे।

उदंतमार्तंड (1826) : परतंत्र भारत में अंग्रेजों के शासन के विरुद्ध शंखनाद के रूप में पत्रकारिता का उदय हुआ। ईस्ट इंडिया कंपनी की दमननीतियों के खिलाफ स्वाधीनता की आकांक्षा को जन-जन तक पहुँचाने के उद्देश्य से, एक मिशन के रूप में, भारत में पत्रकारिता की नींव पड़ी।

‘उदंतमार्तंड’ हिंदी का पहला समाचार-पत्र था। इसका नाम दो शब्दों—‘उदंत’ और ‘मार्तंड’—के मेल से बना था। ‘उदंत’ का अर्थ होता है—‘समाचार’ और ‘मार्तंड’ का अर्थ होता है—‘सूर्य’। इस तरह ‘उदंतमार्तंड’ का अर्थ हुआ—‘समाचार का सूर्य’। वाकई यह पत्र भारत के पूर्वी क्षितिज पर समाचार के सूर्य की तरह उदित हुआ था, जिसकी रोशनी में हिंदी समाज ने पहली बार अपने समय के सोच और सच को पहचानना तथा अपने कर्तव्य-अकर्तव्य को जानना शुरू किया था।

इसका प्रकाशन 30 मई, 1826 ई. को कोलकाता (तत्कालीन कलकत्ता) से एक साप्ताहिक पत्र के रूप में शुरू हुआ था। कोलकाता के कोलू टोला नामक मोहल्ले की 37 नंबर आमड़तल्ला गली से पंडित जुगल किशोर शुक्ल ने इसे निकालने का आयोजन किया था। शुक्ल जी कानपुर के चमनगंज के निकट प्रेम नगर के रहने वाले थे और कोलकाता के दीवानी न्यायालय में वकालत करते थे। यह उल्लेखनीय है कि भारतीय पत्रकारिता की जननी होने का श्रेय बंगाल की धरती को प्राप्त है और हिंदी पत्रकारिता का जन्म भी उसी उर्वर धरती से हुआ। उस समय अंग्रेजी, फारसी और बांग्ला में तो अनेक पत्र निकल रहे थे, किंतु हिंदी में एक भी पत्र नहीं निकला था।

‘उदंतमार्तंड’ की प्रारंभिक विज्ञप्ति इस प्रकार थी—“यह उदंतमार्तंड अब पहले-पहल हिंदुस्तानियों के हित के हेतु जो आज तक किसी ने नहीं चलाया पर अंग्रेजी ओ पारसी ओ बंगाल में जो समाचार का कागज छपता है उनका सुख उन बालियों के जानने और पढ़ने वालों को ही होता है। और सब लोग पराए सुख सुखी होते हैं। जैसे पराए धन धनी होना और अपनी रहते पराई आँख देखना वैसे ही जिस गुण में जिसकी पैठ न हो उसको उसके रस का मिलना कठिन ही है और हिंदुस्तानियों में बहुतेरे ऐसे हैं। इससे सत्य समाचार हिंदुस्तानी लोग देख आप पढ़ ओ समझ लें ओ पराई अपेक्षा न करें ओ अपने भाषे की उपज न छोड़ें। इसलिए दयावान, करुणा और गुणनि के निधान सब के कल्याण के विषय गवरनर जेनेरल बहादुर की आयस से ऐसे साहस में चित्त लगाय के एक प्रकार से यह नया टाट टाटा....।”

यह पत्र पुस्तकाकार छपता था और हर मंगलवार को निकलता था। इसमें विभिन्न नगरों के सरकारी क्षेत्रों की विभिन्न गतिविधियाँ प्रकाशित होती थीं और उस समय की वैज्ञानिक खोजें तथा आधुनिक जानकारी को भी महत्त्व दिया जाता था। इस पत्र में ब्रज और खड़ी बोली दोनों के मिश्रित रूप का प्रयोग किया जाता था जिसे इस पत्र के संचालक ‘मध्यदेशीय भाषा’ कहते थे। यह ‘मध्यदेशीय भाषा’ वस्तुतः ‘पछाँहीं हिंदी’ का दूसरा नाम था। इस पत्र के उद्देश्य के संबंध में बांग्ला साप्ताहिक ‘समाचार चन्द्रिका’ ने लिखा था कि “अज्ञान तथा रूढ़ियों के अँधेरों में जकड़े हुए हिंदुस्तानी लोगों की प्रतिभाओं पर प्रकाश डालने और ज्ञान के प्रकाशनार्थ इस पत्र का श्रीगणेश हुआ था।” और, “हिंदुस्तान और नेपाल तथा इंग्लैंड के साहबों के बीच वितरित हुआ और हो रहा है।”

‘उदंतमार्तंड’ के मुखपृष्ठ पर शीर्षक के नीचे संस्कृत की निम्नलिखित पंक्तियाँ छपी रहती थीं, जिससे इस पत्र के प्रकाशन का पावन लक्ष्य ध्वनित होता था :

“दिवाकांतं कांतिं विनाध्वांदमंतं

न चाप्नोति तद्वज्जागत्यज्ञं लोकः।

समाचारं सेवामृते ज्ञप्त्वमाप्तां

न शक्नोति तस्मात्करोनीति यत्नं।।”

निःसंदेह जन-जागरण की कामना, मानव-कल्याण की आकांक्षा और ऊँचे आदर्श के अभिसिंचन की अभिलाषा से पंडित जुगल किशोर शुक्ल ने ‘उदंतमार्तंड’ का प्रकाशन आरंभ किया था, पर सरकारी सहयोग के अभाव में इसे दीर्घ आयु प्रदान कर पाना उनके लिए संभव नहीं हो सका। उन दिनों सरकारी सहायता के बिना, किसी भी पत्र का चलना प्रायः असंभव था। कंपनी सरकार ने ईसाई मिशनरियों के पत्रों को तो डाक आदि की सुविधा दे रखी थी, पर चेष्टा करने पर भी ‘उदंतमार्तंड’ को यह सुविधा प्राप्त नहीं हो सकी। ग्राहकों की कमी एक बड़ी समस्या थी। गैर हिंदीभाषी क्षेत्र से प्रकाशित होने के कारण इसे पर्याप्त पाठक नहीं मिल सके। इसके कुल 89 अंक ही प्रकाशित हो पाए थे कि डेढ़ साल बाद 4 दिसंबर 1827 ई. को इसका

प्रकाशन बंद करना पड़ा। इसके अंतिम अंक में लिखा है—“उदंतमार्तंड की यात्रा—मिति पौष बदी 1 भौम संवत् 1884 तारीख दिसंबर सन् 1827। जिस संपादकीय उद्घोष के साथ यह समाप्त हुआ, वह आज भी हिंदी पत्रकारिता के संघर्षपूर्ण अस्तित्व के प्रतीकाक्षरों के रूप में उल्लेखनीय है—

“आज दिवस लौ उग चुक्यौ मार्तंड उदंत।

अस्ताचल को जात है दिनकर दिन अब अंत।।”¹

पंडित जुगल किशोर शुक्ल ने मानो अपनी समूची आंतरिक व्यथा को समेटकर इन पंक्तियों के माध्यम से अभिव्यक्त कर दिया था। ‘उदंतमार्तंड’ के प्रथम प्रकाशन की तिथि 30 मई को ‘हिंदी पत्रकारिता दिवस’ के रूप में मनाया जाता है।

‘उदंतमार्तंड’ के बाद की बदली हुई परिस्थितियों में भारतीय समाज में नवजागरण की प्रक्रिया तीव्रतर होती गई और उसमें चेतना के स्तर पर काफी विचारशीलता और गतिशीलता आई। फलतः अनेक संपादकों और प्रकाशकों के प्रयासों से धीरे-धीरे हिंदी पत्रों के प्रकाशन की दिशा में भी स्पृहणीय विकास हुआ। ‘उदंतमार्तंड’ की परंपरा में जून 1854 में कोलकाता से ही श्याम सुंदर सेन नामक बंगाली सज्जन के संपादन में हिंदी का प्रथम दैनिक पत्र **समाचार सुधावर्षण** प्रकाशित हुआ। उल्लेखनीय है कि हिंदी पत्रकारिता की जन्मभूमि होने का गौरव कोलकाता को ही प्राप्त है, जो भारतीय नवजागरण की भी केंद्रीय भूमि के रूप में सर्वमान्य है। इस संदर्भ में रामनिरंजन परिमलेंदु ने अपने आलेख ‘हिंदी के विकास में पश्चिम बंगाल का अवदान’ में लिखा है—“हिंदी के विकास में भारत के हिंदीतर राज्यों का श्रेष्ठ अवदान रहा है। इस अवदान के मूल्यांकन के बिना हिंदी भाषा और साहित्य के विभिन्न स्वरूपों का समग्र रूप प्रकट नहीं हो सकता। हिंदी भाषा और साहित्य के विकास में हिंदी पत्र-पत्रिकाओं का निर्विवाद महत्त्व रहा है। हिंदी ही नहीं, भारतीय पत्रकारिता की भी जन्मभूमि पश्चिम बंगाल की राजधानी कोलकाता ही है।”

कोलकाता के बाहर हिंदी प्रदेश से निकलने वाला पहला हिंदी पत्र **बनारस अखबार** था, जिसका प्रकाशन 1845 ई. में काशी में आरंभ हुआ था। हिंदी पत्रकारिता पर 1857 के प्रथम स्वाधीनता-संग्राम का भी गहरा प्रभाव पड़ा था।

आरंभिक हिंदी पत्रकारिता के उन्नायकों के संदर्भ में डा. कृष्ण बिहारी मिश्र के विचार महत्त्वपूर्ण एवं स्मरणीय हैं—“स्मरणीय है कि हिंदी-पत्रकारिता के आदि उन्नायकों का आदर्श बड़ा था, किंतु साधन-शक्ति सीमित थी। वे नई सभ्यता के संपर्क में आ चुके थे और अपने देश, समाज के लोगों को नवीनता से संपृक्त करने की आकुल आकांक्षा रखते थे। उन्हें न तो सरकारी संरक्षण और प्रोत्साहन प्राप्त था और न तो हिंदी-समाज का सक्रिय सहयोग ही सुलभ था। प्रचार-प्रसार के साधन अविकसित थे। संपादक का दायित्व ही बड़ा था, क्योंकि प्रकाशन-संबंधी सभी दायित्व उसी को वहन करना पड़ता था। हिंदी में अभी समाचार-पत्रों के लिए स्वागत-भूमि नहीं तैयार हुई थी। इसलिए इन्हें हर कदम पर प्रतिकूलता से जूझना पड़ता था और प्रगति के प्रत्येक चरण पर अवरोध का मुकाबला करना पड़ता था। तथापि इनकी निष्ठा सदैव अप्रभावित रही। आर्थिक कठिनाइयों के कारण हिंदी के आदि पत्रकार पं. युगल किशोर शुक्ल ने ‘उदंतमार्तंड’ का प्रकाशन बंद कर दिया था, किंतु इसका अर्थ यह नहीं कि आर्थिक कठिनाइयों ने उनकी निष्ठा को ही खंडित कर दिया था। यदि उनकी निष्ठा टूट गई होती तो कदाचित् पुनः पत्र-प्रकाशन का साहस न करते। हम जानते हैं कि पं. युगल किशोर शुक्ल ने 1850 में पुनः **‘साम्यदंत मार्तंड’** नाम का एक पत्र प्रकाशित किया था। इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रतिकूल परिस्थिति से लड़ने का उनमें अदम्य उत्साह था। उस युग के पत्रकारों की यही एक सामान्य विशेषता थी। युगीन-चेतना के प्रति पत्र सचेत थे और हिंदी-समाज तथा युगीन अभिज्ञता के बीच सेतु का काम कर रहे थे।”²

हिंदी पत्रकारिता के उद्भव और तत्पश्चात् के दिनों, परिस्थितियों का विवेचन करने पर यह निष्कर्ष निकलता है कि हिंदी पत्रकारिता के लिए आरंभिक दिन उत्साहवर्द्धक न रहने के बावजूद निष्ठावान पत्रकारों की श्रेष्ठ महत्वाकांक्षा ने आगे की पीढ़ी में दृढ़ चेतना जगाई। परिणामतः हिंदी पत्रकारिता का विकास आरंभिक दिनों में भले ही मंद गति से हुआ, पर आगे के दिनों में तीव्र गति से विकास भी सुनिश्चित हुआ। आज हिंदी पत्रकारिता के शिखर स्थिति में रहने के दावे पर आपत्ति होने पर भी यह निर्विवाद बात है कि अद्यतन वैज्ञानिक उपलब्धियों के सहारे उत्थान की सीढ़ियों पर वह जरूर अग्रसर है। कई हिंदी पत्र-पत्रिकाएँ आज उपग्रहीय समाचार व्यवस्था से जुड़ी हैं और कई हिंदी पत्रों के इंटरनेट संस्करण भी आज उपलब्ध हैं। जहाँ हिंदी समाचार-पत्रों के वेब पोर्टलों के माध्यम से अद्यतन समाचार पाठकों को सुलभ होते रहते हैं, वहीं दूरदर्शन के विभिन्न चैनलों के माध्यम से सनसनीखेज खबरें परोसी जाती हैं। आज हिंदी में भी कई ब्लॉग

विकसित हुए हैं, जिनमें से कुछ ब्लॉग समाचार माध्यमों के रूप में भी अपनी भूमिका अदा करते हुए नागरिक पत्रकारिता के विकास की स्थिति को दर्शाने के साथ-साथ निश्चय ही यह साबित कर रहे हैं कि सामाचार-प्रसारण की व्यवस्था की गति में अभूतपूर्व ढंग से विकास हुआ है। अमेरिका के किसी भी कोने में घटनेवाली घटना वेबसाइटों में दर्शन देना ही नहीं, भारत के भी कई छोटे शहरों या गावों में घटनेवाली घटनाओं की खबरें भी हमें टीवी चैनलों के माध्यम से मिनटों में मिलना इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। हिंदी पत्रकारिता, हिंदी वेबसाइट या हिंदी चैनल भी ऐसी ही गति से आगे बढ़ रहे हैं। निष्कर्षतः यही कहा जा सकता है कि हिंदी-पत्रकारिता अपने उद्भव काल से ही गतिशील चेतना की स्वामी बनकर प्रगति-पथ पर आगे बढ़ती रही है।

बंगदूत (1829) : कलकत्ता से अंग्रेजी में **बंगाल हेराल्ड** समाचार-पत्र प्रकाशित होता था। उसके संपादक राजा राममोहन राय थे। उन्होंने उसका साप्ताहिक संस्करण 'बंगदूत' 10 मई 1829 ई. को 7, बॉसतल्ला लेन से प्रकाशित किया। वस्तुतः वह बंगला भाषा का पत्र था। समय-समय पर फारसी और हिंदी में भी छपता था। कलकत्ता में हिंदीभाषियों की पर्याप्त संख्या थी, इसलिए उस समय पत्र का हिंदी में भी प्रकाशन होता था। उसे हिंदी पत्र नहीं कहा जा सकता था। उसकी भाषा बंगलामिश्रित हिंदी थी। उसकी हिंदी का उदाहरण इस प्रकार है :

“‘बंगदूत’ नाम का कागज एशिया संज्ञा पृथ्वी के इस प्रसिद्ध खंड में जो कुछ बीते औ होय लिपि की रीति से लिखै। इसलिए इस संबंध में प्रयोजन उपयोगी समाचार जो कोई भेजेंगे वह बड़ा उपकार मान करके लिया जाएगा।

‘बंगदूत’ के हिंदी अंश के ऊपर यह छंद मुद्रित होता था—

दूतनि की यह रीति बहुत थोरे में भाषै।
लोगनि को बहुलाभ होय याही तै लाखै॥
बंगाला को दूत पूत यहि वायु को जानौ।
होय विदित सब देश क्लेश को लेश न मानौ॥”³

प्रजामित्र (1834) : यह समाचार-पत्र कहीं सुलभ नहीं है। इसके प्रकाशित होने की सूचना बंगला के समाचार-पत्र ‘समाचार दर्पण’ के 21 जून 1834 के अंक में दी गयी थी।

“नवीन समाचारपत्र अन्यान्य संवादों के द्वारा ज्ञात हुआ है कि ‘प्रजामित्र’ नामधारी संवादपत्र अंग्रेजी और हिंदुस्तानी में अति शीघ्र प्रकाशित होगा। उसका मूल्य दो रुपये मासिक तथा बीस रुपये वार्षिक है एवं वह सप्ताह में एक बार प्रकाशित होगा।”⁴

यह कहना कठिन है कि यह प्रकाशित हुआ या नहीं। दूसरी बात यह अंग्रेजी, हिंदी में प्रकाशित होगा। इसलिए वह पत्र हिंदी के कितना निकट होगा, कहना कठिन है।

बनारस अखबार (1845) : इस पत्र के विषय में डॉ. धीरेंद्रनाथ सिंह ने अपनी पुस्तक ‘हिंदी पत्रकारिता : भारतेंदु-पूर्व से छायावादोत्तर-काल तक’ में लिखा है—“हिंदी प्रदेशों में सबसे पहले समाचार-पत्रों का प्रकाशन काशी में हुआ। काशी हिंदी की केंद्र-भूमि तो थी ही, पत्रकारिता की भी केंद्र-भूमि थी। काशी से पहला साप्ताहिक पत्र जो प्रकाशित हुआ, वह ‘बनारस अखबार’ था। ‘बनारस अखबार’ के बारे में सबसे पहले सूचना राधाकृष्ण दास ने अपनी पुस्तक ‘हिंदी भाषा के सामयिक पत्रों का इतिहास’ में दिया था। उन्होंने लिखा था—‘हिंदी में सबसे पहिले सन् 1845 ई. के जनवरी में राजा शिवप्रसाद की सहायता से ‘बनारस अखबार’ का जन्म हुआ। यह पत्र लीथो में बहुत ही दरिद्र कागज पर छपता था। इसके संपादक गोविन्द रघुनाथ थत्ते थे। राजा साहेब के आदेशानुसार लिखते थे। इसका मोटो था—

सुबनारस अखबार यह शिवप्रसाद आधार।
बुधि विवेक जन निपुन को चितहित बारंबार।
गिरिजापति नगरी जहाँ गंग अमल जलधार।
नेत शुभाशुभ मुकुर को लखो विचार-विचार।’

राधाकृष्ण दास की उपर्युक्त सूचना के आधार पर बाद में हिंदी के विद्वानों तथा समीक्षकों ने कहा कि ‘बनारस अखबार’ राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द का था। चूँकि शिवप्रसाद उर्दू-परस्त थे इसलिए ‘बनारस अखबार’ की भाषा उर्दू थी। ‘बनारस अखबार’ की भाषा के उर्दूपन का उदाहरण राधाकृष्ण दास ने इस प्रकार दिया है—‘यहाँ जो नया पाठशाला कई साल से जनाब कप्तान किट साहेब बहादुर के इहतिमाम और धर्मात्माओं के मदद से बनता है और उसका हाल कई दफा जाहिर हो चुका है। अब वह मकान एक

आलीशान बन्ने का निशान तैयार हर तरफ से हो ही गया बल्कि इसके नकशे का बयान पहिले मुंदर्ज है सो परमेश्वर के दया से साहब बहादुर ने बड़ी तंदेही और मुस्तैदी से बहुत बेहतर और माकूल बनवाया है।'

इस अखबार के उर्दूपन के रूप में प्रस्तुत उपर्युक्त नमूने को ही सभी विद्वानों ने दोहराया है। वस्तुतः हिंदी के विद्वानों की 'बनारस अखबार' की भाषा के प्रति अवधारणा पूरी तरह से गलत है। इस दिशा में खोज करने का लोगों ने प्रयास नहीं किया। इस अखबार के बारे में वास्तविक तथ्य इस प्रकार हैं—

इस अखबार के संचालक और संपादक गोविंद रघुनाथ थत्ते थे। काशी के दूधविनायक मुहल्ले में उनका अपना प्रेस था जिसका नाम मतवा बनारस अखबार था। उसी प्रेस से हिंदी भाषा में 'बनारस अखबार' और उर्दू में 'बनारस गजट' का प्रकाशन होता था। उस अखबार का प्रकाशन जनवरी 1845 ई. में हुआ था। राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द उस समय मात्र शिवप्रसाद थे। कर्ज से लदे थे। उनके पिता की मृत्यु हो चुकी थी। उनके समक्ष आजीविका की समस्या थी। वे आजीविका की तलाश में 1840 में भरतपुर रियासत में वकील बन गये। पैसा कमाकर लौटे, 1844 के दिसंबर में और अक्टूबर 1845 ई. में नौकरी की तलाश में पुनः निकले। उन्हें ईस्ट इंडिया कंपनी में नौकरी मिली और 1845 के दिसंबर में वे सिखों के युद्ध में शामिल होने के लिए अंग्रेजों की ओर से पंजाब चले गए। अतः ऐसी स्थिति में इस पत्र की सहायता करने का कोई प्रश्न नहीं उठता। साथ ही इस अखबार को नेपाल की महारानी ने अवश्य आर्थिक सहयोग किया था। धार्मिक साहित्य का धारावाहिक प्रकाशन पत्र में होता था। ऐसा लगता है कि 'बनारस अखबार' के सिद्धांत वाक्य में यह कथन—'सुबनारस अखबार यह शिवप्रसाद आधार' से लोगों को भ्रम हुआ हो। यहाँ शिवप्रसाद शब्दप्रयोग राजा शिवप्रसाद के लिए नहीं किया गया है, बल्कि भगवान शिव के लिए किया गया है। इस सिद्धांत वाक्य का अर्थ यह है कि 'भगवान शिव की कृपा से 'बनारस अखबार' का प्रकाशन हो रहा है। इस अखबार के द्वारा समाज के लोगों के हितों की रक्षा की जाएगी। गिरिजापति की नगरी यानि शिव की नगरी काशी से यह पत्र प्रकाशित हो रहा है जहाँ पवित्र गंगा प्रवाहित होती रहती है। जैसे गंगा में स्वच्छ और गंदा जल भी प्रवाहित होता है उसी प्रकार इस पत्र में अच्छे और गलत समाचार भी प्रकाशित हो सकते हैं। पाठकों से निवेदन है कि गलत समाचारों को सुधार कर पढ़ें।

'बनारस अखबार' की फाइल अब नहीं मिलती, किंतु 'बनारस अखबार' 1870—72 तक प्रकाशित होता रहा। उस पत्र की साफ—सुथरी भाषा का उदाहरण इस प्रकार है—

जगन्नाथजी के विषय में

'साबिक में जाहिर हो चुका है कि श्रीयुत बाबू हरिश्चंद्र जी ने प्रश्न किया था कि जगन्नाथ की स्थापना करना या न करना सो बहुत पंडितों से पूछा सब कोई कहते हैं कि यह किसी लेख में नहीं है। श्री जगन्नाथ जी में श्री भागवत 'संसद' सभा के सभापति महंत नारायण दास जी को प्रश्न किया सब सभासद का समत नहीं है न जगन्नाथजी महात्म में न किसी पुराण में और पाँच तरह का महात्म श्री जगन्नाथ का है उसमें भी लेख नहीं है न श्री जगन्नाथ पुरी में इस बात का चर्चा है अब जो कोई इस बात में बचन और लेख देखावे तो उसके बड़े शुकगुजार होंगे।'⁵

शिमला अखबार (1845) : 'शिमला अखबार' का प्रकाशन शिमला शहर से 1848 ई. में हुआ था। यह साप्ताहिक पत्र था। शेख अब्दुला उसके संपादक थे। वह स्थानीय जनता को ज्ञानवर्द्धन—संबंधी जानकारी देता था। उसकी कुल 50 प्रतियाँ छपती थीं। यह बड़ी विचित्र बात थी कि इस अखबार के प्रकाशन पर 40 रुपया खर्च होता था और 30 रुपया आमदनी थी। फलतः एक वर्ष तक चलने के बाद पत्र का प्रकाशन बंद हो गया। उसका पुनः प्रकाशन 1850 ई. में शुरू हुआ और कुछ ही अंक निकलने के बाद उसका प्रकाशन बंद हो गया। वह दुबारा जब प्रकाशित हुआ तब द्विमासिक था। अखबार के बारे में और जानकारी नहीं मिलती। इसमें पहाड़ी जनता से संबंधित रोचक लेख प्रकाशित होते थे।⁶

मालवा अखबार (1848) : 'मालवा अखबार' का प्रकाशन इंदौर से 1848 ई. की पहली जनवरी को हुआ था। वह साप्ताहिक पत्रिका थी। पंडित प्रेमनारायण संपादक थे और वह द्विभाषिक पत्रिका थी। पत्र के प्रथम कॉलम में हिंदी और दूसरे कॉलम में उर्दू समाचार छपा करते थे। वार्षिक मूल्य बारह रुपये था। पत्र लीथो पद्धति से मुद्रित होता था। 'मालवा अखबार' प्रेस मध्य प्रदेश का प्रथम लीथो प्रेस था। वह नित्य प्रति होनेवाली घटनाओं को प्रकाशित करता था। लूट की घटना का समाचार 25 जनवरी 1853 के अंक में इस प्रकार प्रकाशित हुआ था—

“थोड़े दिन हुए कि देपालपुर के करीब बीमा जो कि इंदौर को जाता था, माल करीब 40 हजार का लूट गया था। दो रोज हुए कि तमाम माल लूटनेवालों समेत इंदौर में पकड़ा गया।” वह मध्य प्रदेश का प्रथम समाचार-पत्र था और 1873 ई. तक प्रकाशित होता रहा।⁷

साम्यदन्त मार्तण्ड (1850) : पंडित युगल किशोर सुकुल ने ‘उदन्तमार्तण्ड’ के बंद होने के लगभग 20 साल बाद कलकत्ता से ‘साम्यदन्त’ का प्रकाशन किया था। उस पत्र के बारे में इससे अधिक और कोई भी सूचना उपलब्ध नहीं है।⁸

सुधाकर (1850) : फोर्ट विलियम कॉलेज के अध्यापक पंडित तारिणीचरण मित्र कॉलेज की सेवा से अवकाश ग्रहण करने के बाद काशी आकर बस गये। उन्हीं के पुत्र तारामोहन मिश्र थे। उनके संपादकत्व में ‘सुधाकर’ नामक मासिक पत्र का प्रकाशन आरंभ हुआ। उसके स्वामी पंडित रत्नेश्वर तिवारी थे। उनका राजादरवाजा मुहल्ले में रिकार्डर प्रेस था जहाँ से ‘सुधाकर’ साप्ताहिक प्रकाशित होता था। उस अखबार के बारे में पत्रकारिता जगत में इससे अधिक कोई जानकारी नहीं है कि उस अखबार के नाम पर पंडित सुधाकर द्विवेदी का नाम सुधाकर रखा गया था। सुधाकर द्विवेदी काशी के जाने-माने ज्योतिषी थे। ऐसा कहा जाता है कि ‘सुधाकर’ अखबार की भाषा साफ-सुथरी थी और उसमें ज्ञान और मनोरंजन की सामग्री अधिक होती थी।⁹

निष्कर्ष : निःसंदेह किसी भी देश और समाज के लिए आज पत्रकारिता और जनसंचार एक अनिवार्य वस्तु है। समाज की दशा को सामने लाने के लिए और उसकी दिशा बेहतर बनाने के लिए पत्रकारिता की महत्ता स्वयंसिद्ध है। आज हर जगह पत्रकारिता की पहुँच है। जीवन के हर क्षेत्र में पत्रकारिता की उपस्थिति एक ऐसी शक्ति के रूप में दिखाई देती है जो लोगों के विचारों को प्रभावित, आंदोलित, परिवर्तित और निर्मित करती है। आज पत्रकारिता के कई प्रकार देखने को मिलते हैं। हिंदी पत्रकारिता का स्वरूप आज अत्यंत व्यापक और विकसित हो गया है। किंतु अपने उद्भव काल तथा आरंभिक चरणों में इसे संघर्ष और चुनौतियों का सामना करना पड़ा। यद्यपि यह बात निःसंदेह कही जा सकती है कि कठिनाइयों के बावजूद हिंदी पत्रकारिता अपने आरंभिक काल से ही अपनी आत्मा में मानवीय मूल्यों और नैतिक आदर्शों के दीप जलाए रही। आघातों और तूफानों ने अनेक बार इसे डिगाया किंतु इसके भीतर की ज्योति हमेशा अडिग रही जिसमें उसकी दृष्टि जनकल्याण और मानवहित के पथ पर सदैव एकाग्र रही।

संदर्भ-सूची :

1. हिंदी पत्रकारिता—डॉ. कृष्ण बिहारी मिश्र, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1968, पृ.सं. 37 से उद्धृत
2. बहुवचन, मीडिया विशेष, अंक-49, अप्रैल-जून 2016, प्रधान संपादक-गिरीश्वर मिश्र, संपादक-अशोक मिश्र, प्रकाशक- महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा, पृ.सं. 1017
3. हिंदी पत्रकारिता : भारतेंदु-पूर्व से छायावादोत्तर काल तक—डॉ. धीरेंद्रनाथ सिंह, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, द्वितीय संस्करण, 2012, पृ.सं. 14-15
4. वही, पृ.सं. 15
5. वही, पृ.सं. 15-17
6. वही, पृ.सं. 17
7. वही, पृ.सं. 17
8. वही, पृ.सं. 17
9. वही, पृ.सं. 17-18

जयशंकर प्रसाद के नाटकों में युगबोध

डॉ. आनंद कुमार गोंड*

प्रस्तावना

जयशंकर प्रसाद हिन्दी साहित्य के महत्वपूर्ण नाटककार, कवि, उपन्यासकार और कथाकार हैं। उनकी रचनाओं में भारतीय संस्कृति, इतिहास, राष्ट्रीय चेतना और मानवीय संवेदना का गहरा चित्रण मिलता है। “प्रसाद” ने केवल साहित्य सृजन ही नहीं किया, बल्कि अपने नाटकों के माध्यम से भारतीय समाज के बदलते स्वरूप, उसकी समस्याओं, उसके संघर्ष और उसके भविष्य की दिशा को भी स्पष्ट किया। इसी दृष्टि से उनके नाटकों में **युगबोध** एक केन्द्रीय तत्व के रूप में उपस्थित है।

युगबोध का अर्थ है किसी युग की सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और राजनैतिक परिस्थितियों को समझना तथा उन्हें साहित्य के माध्यम से व्यक्त करना। कोई भी सृष्टा जब अपने समय की नब्ज को पहचानकर उसे कलात्मक रूप देता है, तब वह युगबोध से सम्पन्न रचनाकार माना जाता है। **प्रसाद** के नाटक इस दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण हैं, क्योंकि वे अतीत की घटनाओं और पात्रों के माध्यम से वर्तमान समाज को दिशा देते हैं।

उदाहरण के रूप में, स्कन्दगुप्त में प्रसाद ने राष्ट्रीय एकता, विदेशी आक्रमण के प्रति प्रतिरोध और शासक की कर्तव्यनिष्ठा को उजागर किया है। यह नाटक उस समय के भारत में उत्पन्न राष्ट्रीय चेतना को सशक्त बनाने वाली रचना थी। इसी प्रकार **चन्द्रगुप्त** में राजनैतिक कूटनीति, नेतृत्व और राष्ट्र निर्माण की चेतना का सजीव चित्रण है।

प्रसाद के नाटकों में इतिहास का प्रयोग केवल अतीत को दोहराने के लिए नहीं हुआ, बल्कि वर्तमान को समझने के लिए हुआ है। वे इतिहासिक घटनाओं को इस प्रकार प्रस्तुत करते हैं कि पाठक और दर्शक अपने युग की समस्याओं पर विचार करने को बाध्य हो जाते हैं। **ध्रुवस्वामिनी में नारी-स्वतंत्रता, नारी-गौरव और व्यक्तित्व के प्रश्न उठाए गए हैं, जो आधुनिक समाज में भी उतनी ही प्रासंगिक समस्या है।**

उनके नाटकों में सामाजिक चेतना के साथ-साथ मानवीय संवेदना का भी गहरा समन्वय है। वे मानव जीवन की पीड़ा, संघर्ष, प्रेम, त्याग, कर्तव्य और मान-अपान की भावना को सजीव ढंग से प्रस्तुत करते हैं। **उदाहरण—अजातशत्रु में सत्ता, पारिवारिक संबंध और मानवीय द्वंद्व का मार्मिक चित्रण है।**

प्रसाद की भाषा और शैली भी उनके युगबोध को प्रभावी बनाती है। उनकी भाषा संस्कृतनिष्ठ होते हुए भी सजीव, काव्यात्मक और गम्भीर है। वे संवादों के माध्यम से पात्रों के मनोविज्ञान को भी उजागर करते हैं। इस कारण उनके नाटक केवल मंचन के लिए नहीं, बल्कि अध्ययन और चिन्तन के लिए भी महत्वपूर्ण माने जाते हैं।

अतः स्पष्ट है कि **जयशंकर प्रसाद** के नाटकों में **युगबोध** एक सजीव, गहरा और बहुआयामी तत्व के रूप में उपस्थित है। उनकी रचनाएँ पाठक को केवल मनोरंजन नहीं देती, बल्कि समाज, राष्ट्र और मानवता के प्रति नवीन दृष्टि भी प्रदान करती हैं। इसी कारण प्रसाद हिन्दी नाटक साहित्य में विशेष स्थान रखते हैं।

युगबोध की अवधारणा और प्रसाद

युगबोध का अर्थ है समय की चारों ओर फैली सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक तथा मानवीय स्थितियों को समझना और उन्हें सजीव रूप में प्रस्तुत करना। **जयशंकर प्रसाद** के नाटकों में यह युगबोध बहुत ही गहराई से देखने को मिलता है।

उनकी दृष्टि में **युगबोध** केवल वर्तमान का चित्रण नहीं, बल्कि अतीत और वर्तमान के सम्बन्ध को भी दर्शाता है। वे इतिहास के माध्यम से वर्तमान को समझने का प्रयास करते हैं और यह दिखाते हैं कि समय के साथ समाज की स्थितियों में कैसे परिवर्तन होता रहता है। इसी कारण उनके नाटकों में युगबोध एक गतिशील प्रक्रिया के रूप में उपस्थित है, जो समय, परिस्थिति और समाज के साथ बदलती रहती है।

* सहायक आचार्य, हिन्दी विभाग, उदित नारायण पी.जी. कॉलेज पडरौना, कुशीनगर

Email Id- anand.hindi91@gmail.com

स्कन्दगुप्त में प्रसाद ने राष्ट्रीय एकता, आक्रमण के प्रति प्रतिरोध और शासक के कर्तव्य को उजागर किया है। यह नाटक उसके युग में स्वातंत्र्य चेतना को दृढ़ बनाने वाली रचना थी। “चन्द्रगुप्त” में राजनैतिक चेतना, नेतृत्व और राष्ट्र निर्माण का सजीव चित्रण मिलता है।

उनके नाटकों में युगबोध केवल बाहरी घटनाओं का वर्णन नहीं, बल्कि मानवीय जीवन की आंतरिक स्थितियों का भी चित्रण होता है। वे मानव के भाव, उसकी संवेदना और उसकी विचारधारा को समय के संदर्भ में समझने का प्रयास करते हैं।

अजातशत्रु में पारिवारिक संबंध, सत्ता, महत्वाकांक्षा और मानसिक द्वंद्व का चित्रण है, जिससे यह स्पष्ट होता है कि प्रसाद मनुष्य के भीतरी संघर्ष को भी युगबोध से जोड़कर देखते थे।

प्रसाद के नाटकों में युगबोध का एक महत्वपूर्ण पहलू यह है कि वे समाज की समस्याओं को केवल व्यक्तिगत घटना के रूप में नहीं, बल्कि एक व्यापक संरचना के परिणाम के रूप में प्रस्तुत करते हैं। यह दृष्टि उनके नाटकों को गम्भीर विश्लेषण का रूप प्रदान करती है।

धुवस्वामिनी में नारी-स्वतंत्रता, नारी-गौरव और व्यक्तित्व की चेतना का चित्रण है, जो आधुनिक समाज की समस्याओं से भी जुड़ा हुआ है। इस प्रकार प्रसाद ने नारी प्रश्न को भी युगबोध के केन्द्र में रखा।

उनकी दृष्टि में “युगबोध” का सम्बन्ध राष्ट्रीय चेतना और सांस्कृतिक मूल्यों से भी है। वे भारतीय संस्कृति के मूल्यों को समय के संदर्भ में प्रस्तुत करते हैं और यह दिखाते हैं कि कैसे यह मूल्य समाज के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

प्रसाद के नाटकों में युगबोध पाठक और दर्शक को समाज की वास्तविकता से जोड़ने का कार्य करता है। यह उन्हें इस बात के लिए प्रेरित करता है कि वे समाज की स्थितियों को समझकर उन्हें बदलने के लिए प्रयास करें।

अतः स्पष्ट है कि **जयशंकर प्रसाद** के नाटकों में **युगबोध** एक सजीव, गहरा और गतिशील अवधारणा के रूप में उभरकर सामने आता है, जो पाठक और दर्शक दोनों को समाज की वास्तविकता को समझने, उसके कारणों पर विचार करने और नवीन दिशा में बढ़ने के लिए प्रेरित करता है।

इतिहास और युगबोध

जयशंकर प्रसाद के नाटकों में **इतिहास** का बहुत महत्वपूर्ण स्थान है। वे इतिहास के माध्यम से वर्तमान को समझने का प्रयास करते हैं। उनकी रचनाओं में ऐतिहासिक घटनाओं का चित्रण इस तरह किया गया है कि वह पाठक और दर्शक को वर्तमान समाज की वास्तविकता का अनुभव कराता है। यह चित्रण केवल अतीत की घटनाओं का वर्णन नहीं, बल्कि उन्हें वर्तमान से जोड़ने का सशक्त प्रयास है।

प्रसाद के नाटकों में इतिहास केवल एक पृष्ठभूमि नहीं, बल्कि एक सशक्त माध्यम है, जिसके द्वारा वे समाज की गहरी समस्याओं, राजनैतिक परिस्थितियों और मानवीय मूल्यों को प्रस्तुत करते हैं। यह शैली उनके “युगबोध” को और अधिक प्रभावी बनाती है। उनकी दृष्टि में इतिहास एक शिक्षा का माध्यम है, जो वर्तमान और भविष्य को दिशा देने का कार्य करता है।

स्कन्दगुप्त में प्रसाद ने हुण आक्रमण के समय भारत की राजनैतिक दशा, राष्ट्रीय एकता और रक्षा चेतना का चित्रण किया है। यह नाटक केवल इतिहासिक घटना नहीं, बल्कि उसके माध्यम से समकालीन भारत को एकता का संदेश देता है।

वे इतिहासिक पात्रों और घटनाओं के माध्यम से मानवीय मूल्यों, राष्ट्रीयता और सामाजिक चेतना को उजागर करते हैं। **चन्द्रगुप्त** में चंद्रगुप्त और चाणक्य के माध्यम से नेतृत्व, राजनैतिक कूटनीति और राष्ट्र निर्माण की चेतना को सजीव रूप दिया गया है। यह नाटक बताता है कि सुदृढ़ नेतृत्व किसी भी युग के लिए आवश्यक होता है।

प्रसाद के नाटकों में इतिहासिक परिवेश का चित्रण बहुत ही सजीव और प्रभावी रूप में किया गया है। यह परिवेश पाठक और दर्शक को उस समय की स्थितियों को समझने में मदद करता है और उन्हें वर्तमान के संदर्भ में देखने का अवसर देता है। इसी के साथ वे यह भी दिखाते हैं कि इतिहास केवल बीता हुआ समय नहीं, बल्कि वह वर्तमान में भी जीवित रहता है।

धुवस्वामिनी में नारी-स्वतंत्रता, नारी-गौरव और व्यक्तित्व की चेतना को ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में रखकर प्रस्तुत किया गया है। इससे स्पष्ट होता है कि प्रसाद अतीत की कथा के माध्यम से आधुनिक समाज के प्रश्नों को उठाते हैं।

उनकी रचनाओं में **इतिहास और युगबोध** का सम्बन्ध बहुत ही गहरा है। वे अतीत और वर्तमान के बीच एक सजीव सम्बन्ध स्थापित करते हैं, जिसके माध्यम से पाठक को समाज की वास्तविकता का विस्तार से अनुभव होता है। अतीत की सफलता, असफलता, संघर्ष और मूल्यों से वे वर्तमान को दिशा देते हैं।

अतः स्पष्ट है कि **जयशंकर प्रसाद** के नाटकों में **इतिहास और युगबोध** एक दूसरे से गहरी तरह जुड़े हुए हैं, जो उनकी नाट्य रचनाओं को गम्भीर, प्रेरणादायक और अर्थपूर्ण स्वरूप प्रदान करते हैं। यह पाठक और दर्शक दोनों को समाज की वास्तविकता को समझने, उससे शिक्षा लेने और भविष्य के लिए सही दिशा चुनने के लिए प्रेरित करता है।

राजनैतिक चेतना एवं युगीन परिवेश का विस्तृत विश्लेषण

जयशंकर प्रसाद के नाटकों में **राजनैतिक परिस्थितियों** का स्पष्ट और गहरा चित्रण होता है। वे सत्ता, शासन, राजनीति, राष्ट्रीय एकता और नेतृत्व की विशेषताओं को उजागर करते हैं। उनकी रचनाओं में राजनैतिक चेतना के साथ-साथ राष्ट्रीयता की भावना भी देखने को मिलती है। वे राष्ट्र के प्रति गौरव, एकीकरण और सुधार की आवश्यकता पर विशेष बल देते हैं।

उनके के नाटकों में राजनैतिक **युगबोध** केवल सत्ता के वर्णन तक सीमित नहीं है, बल्कि वह सत्ता के सही प्रयोग और दुरुपयोग दोनों को स्पष्ट रूप से दर्शाता है। वे दिखाते हैं कि जब सत्ता जनता के हित में कार्य करती है, तो वह समाज के विकास में सहायक होती है, किन्तु जब वह स्वर्थ, अन्याय और शोषण का साधन बन जाती है, तो वह समाज के लिए हानिकारक हो जाती है।

चन्द्रगुप्त में चाणक्य और चंद्रगुप्त के माध्यम से सशक्त नेतृत्व, राजनैतिक कूटनीति और राष्ट्र निर्माण की चेतना को प्रस्तुत किया गया है। इस नाटक में यह स्पष्ट होता है कि सही नेतृत्व किसी भी राष्ट्र को एकता और प्रगति की ओर ले जा सकता है।

उनकी रचनाओं में राजनैतिक विसंगतियों का चित्रण इस तरह किया गया है कि वह पाठक और दर्शक को सोचने पर विवश कर देता है। वे समाज में व्याप्त अन्याय, असन्तुलन, भ्रष्टाचार और अन्याय को सजीव रूप में प्रस्तुत करते हैं।

स्कन्दगुप्त में विदेशी आक्रमण के समय आंतरिक मतभेद, राजनैतिक असंगठन और राष्ट्रीय संकट का चित्रण है, जिससे यह ज्ञात होता है कि जब राष्ट्र के नेता स्वर्थ में उलझ जाते हैं, तब बाह्य शक्तियाँ आक्रमण करती हैं।

इसी के साथ **प्रसाद** यह भी स्पष्ट करते हैं कि राजनैतिक चेतना समाज के विकास के लिए अत्यंत आवश्यक है। वे जनता को अपने अधिकारों, कर्तव्यों और राष्ट्र के प्रति उत्तरदायित्व के लिए जागरूक करने का प्रयास करते हैं। उनकी दृष्टि में राजनैतिक युगबोध का सम्बन्ध सामाजिक और सांस्कृतिक युगबोध से भी है।

धुव्रस्वामिनी में नारी के स्वभाव, स्वतंत्रता और व्यक्तित्व के प्रश्न को राजनैतिक परिवेश से जोड़कर दिखाया गया है। इस वे बताते हैं कि राजनीति का प्रभाव समाज के हर वर्ग, विशेषतः नारी जीवन पर भी पड़ता है।

उनके नाटकों में राजनैतिक युगबोध एक प्रेरणा का कार्य भी करता है। यह पाठक और दर्शक को इस बात के लिए प्रेरित करता है कि वे समाज की राजनैतिक स्थितियों को समझकर उन्हें सुधारने का प्रयास करें। वे यह संदेश देते हैं कि जनता की जागरूकता और नेताओं की नैतिकता से ही सुशासन संभव है।

अतः स्पष्ट है कि **जयशंकर प्रसाद** के नाटकों में **राजनैतिक युगबोध** एक गहरा, सजीव और संवेदनशील रूप में उभरकर सामने आता है, जो उनकी नाट्य रचनाओं को केवल मनोरंजनक नहीं, बल्कि राष्ट्रीय चेतना, नैतिक शिक्षा और समकालीन प्रासंगिकता से युक्त बनाता है।

सामाजिक संरचना एवं युगीन चेतना का गहरा विश्लेषण

जयशंकर प्रसाद के नाटकों में **सामाजिक जीवन** का यथार्थपूर्ण और सजीव चित्रण मिलता है। वे समाज के विभिन्न वर्गों, संघर्षों, असमानताओं और समस्याओं को अपनी रचनाओं में स्थान देते हैं। उनकी नाट्य कृतियों में समानता, न्याय, मानवीय गौरव और सामाजिक मूल्यों पर विशेष बल दिया गया है। वे समाज को एक ऐसी दिशा में ले जाने का प्रयास करते हैं जहाँ प्रत्येक व्यक्ति को समान अधिकार और सम्मान प्राप्त हो।

प्रसाद के नाटकों में **सामाजिक युगबोध** केवल बाहरी जीवन का चित्रण नहीं, बल्कि वह समाज की गहरी संरचना और उसके भीतर व्याप्त विसंगतियों को भी उजागर करता है। वे दिखाते हैं कि समाज में

ऊँच-नीच, असमानता, अन्याय, भेदभाव और शोषण जैसी समस्याएँ किस प्रकार मानव जीवन को प्रभावित करती हैं।

धुव्रस्वामिनी में नारी के स्वभाव, स्वतंत्रता, सम्मान और व्यक्तित्व के प्रश्नों को उठाया गया है। इस नाटक के माध्यम से प्रसाद ने समाज में नारी की स्थिति और उसके अधिकारों के प्रश्न को गम्भीरता से रखा। यह उनके सामाजिक युगबोध का सशक्त उदाहरण है।

उनकी रचनाओं में सामाजिक संघर्ष का चित्रण बहुत ही सजीव और संवेदनशील ढंग से किया गया है। वे समाज के विभिन्न वर्गों के बीच बढ़ती दूरी, आपसी टकराव और उसके कारण उत्पन्न होने वाली समस्याओं को स्पष्ट रूप से प्रस्तुत करते हैं।

अजातशत्रु में पारिवारिक संबंधों, सत्ता के प्रति मोह, पीढ़ी संघर्ष और मानवीय मूल्यों के टकराव का चित्रण मिलता है। इस से स्पष्ट होता है कि प्रसाद समाज की समस्याओं को केवल बाहरी दृष्टि से नहीं, बल्कि मनोविज्ञानिक दृष्टि से भी देखते थे।

इसी के साथ **प्रसाद** यह भी दिखाते हैं कि **सामाजिक परिवर्तन** एक आवश्यक प्रक्रिया है। वे समाज को यह संदेश देते हैं कि उसे अपनी कमियों, कुरीतियों और अन्यायपूर्ण व्यवस्थाओं को समझकर उन्हें दूर करने के लिए प्रयास करना चाहिए।

स्कन्दगुप्त में राष्ट्रीय संकट के समय समाज की एकता, त्याग और सामूहिक कर्तव्यों की भावना को उजागर किया गया है। इस से ज्ञात होता है कि सामाजिक एकता के बिना राष्ट्र की रक्षा और प्रगति संभव नहीं।

उनकी दृष्टि में **सामाजिक युगबोध** का सम्बन्ध मानवीय संवेदना से भी है। वे मानव जीवन की पीड़ा, संघर्ष, आशा, त्याग और आकांक्षाओं को इस तरह प्रस्तुत करते हैं कि वह पाठक और दर्शक के मन पर गहरा असर छोड़ता है।

प्रसाद के नाटकों में सामाजिक युगबोध एक प्रेरणा का कार्य भी करता है। यह पाठक और दर्शक को इस बात के लिए प्रेरित करता है कि वे समाज की समस्याओं को समझकर उन्हें सुधारने का प्रयास करें। वे यह बताते हैं कि जागरूक समाज ही उन्नत समाज बन सकता है।

अतः स्पष्ट है कि **जयशंकर प्रसाद** के नाटकों में **सामाजिक युगबोध** एक गहरा, सजीव और संवेदनशील रूप में उभरकर सामने आता है, जो उनकी नाट्य कला को केवल साहित्यिक नहीं, बल्कि समाज-सुधारक, मानवतावादी और युगप्रवर्तक स्वरूप प्रदान करता है।

स्त्री जीवन का सामाजिक और मानवीय परिप्रेक्ष्य में युगबोध

जयशंकर प्रसाद के नाटकों में **स्त्री जीवन** का बहुत ही महत्वपूर्ण स्थान है। वे स्त्री के संघर्ष, सम्मान, उसके अधिकार और समाज में उसकी भूमिका को बहुत ही संवेदनशील ढंग से प्रस्तुत करते हैं। उनकी रचनाओं में स्त्री केवल सहायक पात्र के रूप में नहीं, बल्कि एक सशक्त, विचारशील, त्यागमयी और स्वतन्त्र व्यक्तित्व के रूप में उभरकर सामने आती है। वे स्त्री को समाज के एक महत्वपूर्ण और सक्रिय घटक के रूप में देखते हैं, जो परिवार और समाज दोनों के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

प्रसाद के नाटकों में स्त्री जीवन का **युगबोध** इस तरह उभरता है कि वह समय की सामाजिक और सांस्कृतिक स्थितियों को स्पष्ट रूप से दर्शाता है। वे दिखाते हैं कि स्त्री को समाज में कई प्रकार की बाधाओं, असमानताओं और संघर्षों का सामना करना पड़ता है, चाहे वह घर की सीमाएँ हों या बाहरी समाज की कठोर व्यवस्था।

धुव्रस्वामिनी प्रसाद के इस दृष्टिकोण का सर्वोत्तम उदाहरण है। इस नाटक में धुव्रस्वामिनी केवल रानी या नारी पात्र नहीं, बल्कि आत्मसम्मान, स्वतंत्रता और व्यक्तित्व की प्रतिनिधि के रूप में उभरती है। वह अपने जीवन के निर्णय स्वयं लेने की क्षमता रखती है और पुरुष-प्रधानता को चुनौती देती है।

उनकी रचनाओं में स्त्री के प्रति संवेदनशीलता और सम्मान की भावना स्पष्ट रूप से देखने को मिलती है। वे समाज को यह संदेश देते हैं कि स्त्री को केवल दया या आश्रित दृष्टि से नहीं, बल्कि समानता, गौरव और सम्मान की दृष्टि से देखा जाना चाहिए।

स्कन्दगुप्त में भी नारी पात्रों के माध्यम से राष्ट्रभक्ति, कर्तव्य और त्याग की उच्च भावना को उजागर किया गया है। इससे स्पष्ट होता है कि प्रसाद नारी को केवल गृह सीमा तक सीमित नहीं रखते, बल्कि उसे राष्ट्र जीवन से जोड़कर देखते हैं।

इसी के साथ प्रसाद स्त्री के आंतरिक शक्ति और उसकी सहनशीलता को भी उजागर करते हैं। वे यह दिखाते हैं कि स्त्री किसी भी कठिनाई, पीड़ा या प्रतिकूल परिस्थिति का सामना करते हुए अपने आत्मबल, धैर्य और विवेक के बल पर आगे बढ़ सकती है।

अजातशत्रु में पारिवारिक संबंधों के बीच नारी पात्रों की भावनात्मक संवेदना, धैर्य और समन्वय शक्ति का चित्रण है, जो स्त्री के मानवीय पक्ष को सजीव बनाता है।

उनकी दृष्टि में स्त्री जीवन का युगबोध केवल समस्याओं का चित्रण नहीं, बल्कि उसकी संभावनाएँ, उसके अधिकार और उसके सशक्त स्वरूप का भी प्रस्तुतीकरण है। यह दृष्टि उनके नाटकों को और अधिक मानवीय, यथार्थपूर्ण और गहरा बनाती है।

प्रसाद के नाटकों में स्त्री जीवन का युगबोध एक प्रेरणा का कार्य भी करता है। यह पाठक और दर्शक को स्त्री के प्रति संवेदनशील, न्यायपूर्ण और सम्मान की भावना विकसित करने के लिए प्रेरित करता है।

अतः स्पष्ट है कि जयशंकर प्रसाद के नाटकों में स्त्री जीवन का युगबोध एक गहरा, संवेदनशील और प्रभावी रूप में उभरकर सामने आता है, जो उनकी नाट्य कला को केवल साहित्यिक नहीं, बल्कि मानवतावादी, समाज-सुधारक और प्रगतिशील स्वरूप प्रदान करता है।

भाषा एवं शैली का साहित्यिक और सांस्कृतिक विश्लेषण

जयशंकर प्रसाद की भाषा गम्भीर, संवेदनशील, काव्यात्मक और प्रभावपूर्ण है। उनकी शैली में साहित्यिक सुन्दरता, गम्भीरता और विचार-गहराई का अदभुत समन्वय देखने को मिलता है। उनकी भाषा की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वह भारतीय संस्कृति, इतिहास और परम्परा से गहरी तरह जुड़ी हुई है। वे संस्कृतनिष्ठ शब्दों का प्रयोग करते हुए भी अपनी भाषा को सुबोध, सजीव और प्रभावी बना देते हैं।

स्कन्दगुप्त और **चन्द्रगुप्त** जैसे नाटकों में उनकी भाषा में वीरता, राष्ट्रीय चेतना और गौरव की गूँज सुनाई देती है। इसमें संस्कृतनिष्ठ शब्दों के साथ गम्भीर संवाद पात्रों के व्यक्तित्व को उच्चता प्रदान करते हैं।

प्रसाद की शैली में काव्यात्मकता का विशेष स्थान है। वे सामान्य संवादों को भी एक काव्यात्मक रूप देते हैं, जिससे उनके नाटकों में सुन्दरता और गम्भीरता दोनों का समन्वय देखने को मिलता है। उनकी भाषा में संवेदना और भावना का गहरा प्रभाव है। वे पात्रों के भाव, उनकी आंतरिक स्थिति और मनोदशा को इस तरह प्रस्तुत करते हैं कि पाठक और दर्शक के मन पर गहरा असर छोड़ते हैं।

धुव्रस्वामिनी में नारी पात्रों के संवादों में कोमलता, आत्मसम्मान और भावनात्मक गहराई स्पष्ट दिखाई देती है। यह उनकी भाषा की संवेदनशीलता का उत्तम उदाहरण है।

इसी के साथ प्रसाद की शैली में नवीनता और स्वतन्त्रता भी देखने को मिलती है। वे परम्परागत नाटक शैली से अलग हटकर एक नए तरीके से अपने विचारों को प्रस्तुत करते हैं, जो उनके नाटकों को विशेष बनाता है। वे इतिहासिक विषयों को आधुनिक चेतना से जोड़कर प्रस्तुत करते हैं।

अजातशत्रु में मनोविज्ञानिक द्वंद्व, पारिवारिक तनाव और मानवीय संघर्ष का चित्रण इस तरह है कि पात्रों के संवाद उनके मन की आवाज बन जाते हैं। यह प्रसाद की नवीन नाट्यशैली का सशक्त प्रमाण है।

उनकी भाषा में लोक जीवन की झलक भी स्पष्ट रूप से देखने को मिलती है। जहाँ आवश्यकता होती है, वहाँ वे सरल, सहज और व्यावहारिक शब्दों का प्रयोग करते हैं, जिससे नाटकों में यथार्थ और सजीवता बढ़ती है।

उनकी शैली का एक अन्य महत्वपूर्ण पहलू उसकी संवेदनशीलता और आक्रोश का संतुलित प्रयोग है। वे जहाँ एक ओर मानवीय भावना को प्रस्तुत करते हैं, वही दूसरी ओर समाज की विसंगतियों, अन्याय और कुरीतियों पर प्रहार भी करते हैं।

धुव्रस्वामिनी में नारी के अधिकारों का प्रश्न और **स्कन्दगुप्त** में राष्ट्रीय एकता का प्रश्न इसी चेतना को दर्शाता है।

अतः स्पष्ट है कि जयशंकर प्रसाद की भाषा एवं शैली उनके नाटकों का एक महत्वपूर्ण आधार है, जो उनके युगबोध को और अधिक प्रभावी बनाती है। यह पाठक और दर्शक दोनों को उनके साहित्य का गहरा, सजीव और स्मरणीय अनुभव प्रदान करती है।

निष्कर्ष

इस प्रकार स्पष्ट है कि जयशंकर प्रसाद के नाटकों में युगबोध एक महत्वपूर्ण और केन्द्रीय तत्व के रूप में उपस्थित है। उनकी रचनाओं में अपने युग की वास्तविकता, सामाजिक परिस्थितियों, राजनैतिक

परिवर्तन और सांस्कृतिक चेतना का गहरा और सजीव चित्रण मिलता है। वे नाटक केवल मनोरंजन के लिए नहीं, बल्कि समाज को दिशा देने के लिए भी रचित हैं।

उनका साहित्य पाठक को केवल सूचना नहीं देता, बल्कि उसे सोचने, समझने और आत्मचिन्तन के लिए प्रेरित करता है। इस दृष्टि से उनका साहित्य समाज में जागरूकता, विवेक और विचारशीलता को बढ़ावा देता है।

स्कन्दगुप्त में राष्ट्रीय एकता, विदेशी आक्रमण के प्रति प्रतिरोध और कर्तव्यनिष्ठा का संदेश मिलता है, जबकि **चन्द्रगुप्त** में नेतृत्व, राजनैतिक कूटनीति और राष्ट्र निर्माण की चेतना का सजीव चित्रण है। ये नाटक बताते हैं कि प्रसाद इतिहास के माध्यम से वर्तमान को समझाने का कार्य करते हैं।

इसी के साथ यह भी स्पष्ट होता है कि **प्रसाद** के नाटकों में युगबोध केवल वर्तमान समय का चित्रण नहीं, बल्कि अतीत और वर्तमान के बीच एक गहरा सम्बन्ध भी स्थापित करता है। यह दृष्टि उनके नाटकों को गम्भीर, चिन्तनशील और अर्थपूर्ण स्वरूप प्रदान करती है।

उनकी रचनाओं में सामाजिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक और मानवीय पहलुओं का सम्पूर्ण चित्रण मिलता है। **ध्रुवस्वामिनी** में नारी-स्वतंत्रता, आत्मसम्मान और नारी अधिकार का प्रश्न उठाया गया है, जबकि **अजातशत्रु** में पारिवारिक तनाव, सत्ता संघर्ष और मानवीय मूल्यों का मर्मतक चित्रण मिलता है। यह विविधता उनके नाटकों को व्यापक और बहुआयामी बनाती है।

प्रसाद का युगबोध पाठक और दर्शक को समाज की वास्तविकता का अनुभव कराता है और उन्हें इस बात के लिए प्रेरित करता है कि वे केवल यथास्थिति को स्वीकार नहीं, बल्कि उसे सुधारने का प्रयास भी करें। उनकी रचनाओं में मानवीय मूल्य, राष्ट्रीयता, संस्कृतिक गौरव और नैतिक चेतना का भी गहरा प्रभाव देखने को मिलता है।

अतः स्पष्ट है कि **जयशंकर प्रसाद** के नाटकों में **युगबोध** एक गहरा, सजीव और गतिशील अवधारणा के रूप में उभरकर सामने आता है, जो हिन्दी नाटक साहित्य में उनके विशेष स्थान को दृढ़ करता है। उनकी रचनाएँ आज भी उतनी ही प्रासंगिक हैं, क्योंकि वे समाज, राष्ट्र और मानवता को नवीन दृष्टि प्रदान करती हैं।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

- जयशंकर प्रसाद रचनावली, — रामविलास शर्मा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
- चन्द्रगुप्त, — जयशंकर प्रसाद, राजकमल प्रकाशन।
- स्कंधगुप्त, — जयशंकर प्रसाद, लोकभारती प्रकाशन।
- ध्रुवस्वामीनी, — जयशंकर प्रसाद।
- आर्जशा, — जयशंकर प्रसाद।
- प्रसाद के नाटक, — रामविलास शर्मा।
- जयशंकर प्रसाद: व्यक्तित्व और कृतित्व, — रामविलास शर्मा।
- हिन्दी साहित्य का इतिहास, — आचार्य रामचन्द्र शुक्ल।
- हिन्दी साहित्य का इतिहास, — हजारी प्रसाद द्विवेदी।
- आधुनिक हिन्दी नाटक, — नामवर सिंह।
- हिन्दी नाटक और रंगमंच, — नन्ददुलारे वाजपेयी।
- आधुनिक हिन्दी साहित्य, — डॉ. नगेन्द्र।
- हिन्दी नाटक का इतिहास, — रामस्वरूप चतुर्वेदी।
- भारतीय नाटक और रंगमंच, — नगेन्द्र।
- हिन्दी साहित्य और समाज, — नामवर सिंह।
- आधुनिक हिन्दी काव्य, — डॉ. नगेन्द्र।
- हिन्दी आलोचना का विकास, — नन्ददुलारे वाजपेयी।
- हिन्दी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास, — रामस्वरूप चतुर्वेदी।
- प्रगतिवादी साहित्य, — डॉ. शिवकुमार मिश्रा।
- हिन्दी नाटक में युगबोध, — विश्वनाथ त्रिपाठी।



ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्र के किशोर विद्यार्थियों में आत्मविश्वास एवं जीवन लक्ष्य निर्धारण का तुलनात्मक अध्ययन

डॉ. अच्छे लाल यादव*

सारांश

किशोरावस्था मानव विकास की एक महत्वपूर्ण अवस्था है, जिसमें व्यक्तित्व, आत्म-अवधारणा, आत्मविश्वास तथा जीवन के लक्ष्यों का निर्माण होता है। आत्मविश्वास व्यक्ति की स्वयं की क्षमताओं पर विश्वास को व्यक्त करता है, जबकि जीवन लक्ष्य निर्धारण व्यक्ति के भविष्य की दिशा और उपलब्धियों को निर्धारित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। ग्रामीण एवं शहरी परिवेश में उपलब्ध संसाधनों, शैक्षिक अवसरों, सामाजिक वातावरण तथा पारिवारिक पृष्ठभूमि में अंतर होने के कारण विद्यार्थियों के आत्मविश्वास एवं जीवन लक्ष्य निर्धारण में भिन्नता देखने को मिल सकती है। प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्र के किशोर विद्यार्थियों में आत्मविश्वास एवं जीवन लक्ष्य निर्धारण के स्तर का तुलनात्मक अध्ययन करना है।

अध्ययन के लिए 300 किशोर विद्यार्थियों (150 ग्रामीण एवं 150 शहरी) का चयन किया गया। आत्मविश्वास मापनी तथा जीवन लक्ष्य निर्धारण प्रश्नावली के माध्यम से आंकड़े संकलित किए गए। प्राप्त आंकड़ों का विश्लेषण माध्य, मानक विचलन एवं *t*-परीक्षण द्वारा किया गया। अध्ययन के निष्कर्षों से ज्ञात हुआ कि शहरी विद्यार्थियों का आत्मविश्वास स्तर ग्रामीण विद्यार्थियों की अपेक्षा अधिक पाया गया, जबकि जीवन लक्ष्य निर्धारण के स्तर में भी शहरी विद्यार्थियों ने अपेक्षाकृत अधिक स्पष्टता प्रदर्शित की। तथापि ग्रामीण विद्यार्थियों में भी उच्च आकांक्षाएँ और लक्ष्य प्राप्ति की प्रबल इच्छा देखी गई। अध्ययन से यह भी स्पष्ट हुआ कि आत्मविश्वास और जीवन लक्ष्य निर्धारण के मध्य सकारात्मक सहसंबंध पाया जाता है।

अध्ययन के निष्कर्ष शिक्षकों, अभिभावकों एवं शिक्षा-नीति निर्माताओं के लिए उपयोगी हैं तथा विद्यार्थियों में आत्मविश्वास और लक्ष्य-निर्धारण क्षमता के विकास हेतु मार्गदर्शन प्रदान करते हैं।

शब्द कुंजी: आत्मविश्वास, जीवन लक्ष्य निर्धारण, किशोर विद्यार्थी, ग्रामीण क्षेत्र, शहरी क्षेत्र, तुलनात्मक अध्ययन, व्यक्तित्व विकास।

प्रस्तावना

मानव जीवन में सफलता, प्रगति और आत्म-संतुष्टि प्राप्त करने के लिए आत्मविश्वास तथा स्पष्ट जीवन लक्ष्य अत्यंत महत्वपूर्ण माने जाते हैं। ये दोनों मनोवैज्ञानिक एवं व्यक्तित्वगत गुण व्यक्ति के संपूर्ण विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। आत्मविश्वास व्यक्ति को अपनी क्षमताओं पर विश्वास करने की शक्ति प्रदान करता है, जबकि जीवन लक्ष्य निर्धारण उसके जीवन को दिशा, उद्देश्य और प्रेरणा प्रदान करता है। विशेष रूप से किशोरावस्था में इन दोनों गुणों का महत्व और अधिक बढ़ जाता है, क्योंकि यही वह अवस्था होती है जिसमें व्यक्ति अपने भविष्य, करियर, शिक्षा और सामाजिक भूमिका के बारे में गंभीरता से विचार करना प्रारंभ करता है। किशोरावस्था में विकसित होने वाला आत्मविश्वास और जीवन के प्रति दृष्टिकोण व्यक्ति के संपूर्ण भविष्य को प्रभावित कर सकता है।

किशोरावस्था मानव विकास की एक महत्वपूर्ण संक्रमणकालीन अवस्था है, जो बाल्यावस्था और प्रौढ़ावस्था के बीच की कड़ी का कार्य करती है। सामान्यतः 13 से 19 वर्ष की आयु के बीच की अवधि को किशोरावस्था कहा जाता है। इस अवस्था में व्यक्ति शारीरिक, मानसिक, संवेगात्मक, सामाजिक तथा बौद्धिक स्तर पर तीव्र परिवर्तन अनुभव करता है। किशोर अपने व्यक्तित्व की पहचान विकसित करने, स्वतंत्र निर्णय लेने, सामाजिक संबंधों को समझने तथा जीवन के उद्देश्यों को निर्धारित करने का प्रयास करते हैं। यही वह समय होता है जब वे अपने भविष्य के सपनों और आकांक्षाओं को आकार देते हैं। इसलिए इस अवस्था में आत्मविश्वास तथा जीवन लक्ष्य निर्धारण का अध्ययन विशेष महत्व रखता है।

आत्मविश्वास (Self-Confidence) व्यक्ति के व्यक्तित्व का एक प्रमुख घटक है। यह व्यक्ति की स्वयं की योग्यता, क्षमता, निर्णय शक्ति और कार्यकुशलता पर विश्वास की भावना को व्यक्त करता है। आत्मविश्वास

* असिस्टेंट प्रोफेसर, पं. दीनदयाल उपाध्याय राजकीय महाविद्यालय, सैदपुर, गाजीपुर

व्यक्ति को नई चुनौतियों का सामना करने, कठिन परिस्थितियों में दृढ़ रहने तथा अपने लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु निरंतर प्रयास करने की प्रेरणा देता है। उच्च आत्मविश्वास वाले विद्यार्थी सामान्यतः अधिक सक्रिय, आशावादी, परिश्रमी तथा उपलब्धि-उन्मुख होते हैं। वे असफलताओं से निराश होने के बजाय उनसे सीखने का प्रयास करते हैं और अपने लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए निरंतर प्रयासरत रहते हैं। इसके विपरीत निम्न आत्मविश्वास वाले विद्यार्थी अपने निर्णयों को लेकर संदेह करते हैं, चुनौतियों से बचने का प्रयास करते हैं तथा असफलता के भय से ग्रसित रहते हैं।

मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से आत्मविश्वास का विकास अनेक कारकों पर निर्भर करता है। परिवार, विद्यालय, सामाजिक वातावरण, आर्थिक स्थिति, सांस्कृतिक मूल्य, साथियों का प्रभाव तथा व्यक्तिगत अनुभव आत्मविश्वास के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। जिन विद्यार्थियों को परिवार और विद्यालय से प्रोत्साहन, सहयोग तथा सकारात्मक प्रतिक्रिया प्राप्त होती है, उनमें आत्मविश्वास का स्तर सामान्यतः अधिक होता है। वहीं निरंतर आलोचना, असफलता, उपेक्षा अथवा अवसरों की कमी आत्मविश्वास के विकास को बाधित कर सकती है।

जीवन लक्ष्य निर्धारण (Life Goal Setting) भी व्यक्तित्व विकास का एक महत्वपूर्ण आयाम है। लक्ष्य वह स्थिति या उपलब्धि है जिसे प्राप्त करने के लिए व्यक्ति अपने प्रयासों को निर्देशित करता है। जीवन लक्ष्य व्यक्ति को दिशा प्रदान करते हैं तथा उसके व्यवहार को संगठित और उद्देश्यपूर्ण बनाते हैं। लक्ष्य व्यक्ति के जीवन में प्रेरणा का स्रोत होते हैं और उसे कठिनाइयों का सामना करने की शक्ति प्रदान करते हैं। स्पष्ट एवं यथार्थवादी लक्ष्य रखने वाले विद्यार्थी अपने समय, ऊर्जा और संसाधनों का बेहतर उपयोग कर पाते हैं तथा अपने जीवन में अधिक सफलता प्राप्त करते हैं।

जीवन लक्ष्य निर्धारण की प्रक्रिया किशोरावस्था में विशेष रूप से महत्वपूर्ण हो जाती है। इस अवस्था में विद्यार्थी अपनी शिक्षा, करियर, सामाजिक जीवन तथा व्यक्तिगत विकास के संबंध में निर्णय लेने लगते हैं। वे डॉक्टर, इंजीनियर, शिक्षक, वैज्ञानिक, खिलाड़ी, प्रशासक या अन्य किसी क्षेत्र में सफलता प्राप्त करने के सपने देखते हैं। इन सपनों को वास्तविकता में बदलने के लिए स्पष्ट लक्ष्य और आत्मविश्वास दोनों की आवश्यकता होती है। यदि किसी विद्यार्थी के पास स्पष्ट लक्ष्य हैं लेकिन आत्मविश्वास का अभाव है, तो वह अपने लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए आवश्यक प्रयास नहीं कर पाएगा। इसी प्रकार यदि आत्मविश्वास तो है लेकिन लक्ष्य स्पष्ट नहीं हैं, तो उसकी ऊर्जा और क्षमता उचित दिशा में उपयोग नहीं हो पाएगी। इसलिए आत्मविश्वास और जीवन लक्ष्य निर्धारण एक-दूसरे के पूरक माने जाते हैं।

भारत जैसे विशाल और विविधतापूर्ण देश में ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों की सामाजिक, आर्थिक तथा शैक्षिक परिस्थितियों में उल्लेखनीय अंतर पाया जाता है। इन अंतरों का प्रभाव विद्यार्थियों के व्यक्तित्व विकास, आत्मविश्वास तथा जीवन लक्ष्यों पर भी पड़ता है। ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाले विद्यार्थियों को अनेक बार सीमित शैक्षिक संसाधनों, आर्थिक कठिनाइयों, अपर्याप्त करियर मार्गदर्शन तथा तकनीकी सुविधाओं की कमी का सामना करना पड़ता है। इसके विपरीत शहरी क्षेत्रों में विद्यार्थियों को बेहतर विद्यालय, पुस्तकालय, इंटरनेट, कोचिंग संस्थान, करियर काउंसलिंग तथा विविध अवसर उपलब्ध होते हैं। परिणामस्वरूप दोनों परिवेशों के विद्यार्थियों के अनुभवों और आकांक्षाओं में अंतर देखने को मिल सकता है।

ग्रामीण क्षेत्र भारतीय समाज की आधारशिला माने जाते हैं। भारत की एक बड़ी जनसंख्या आज भी ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करती है। ग्रामीण विद्यार्थियों का जीवन सामान्यतः सामुदायिक मूल्यों, पारिवारिक संबंधों और सांस्कृतिक परंपराओं से प्रभावित होता है। इन विद्यार्थियों में परिश्रम, धैर्य तथा संघर्षशीलता जैसे गुण प्रायः अधिक विकसित होते हैं। हालांकि अनेक ग्रामीण क्षेत्रों में शिक्षा, स्वास्थ्य तथा तकनीकी संसाधनों की सीमित उपलब्धता उनके विकास में बाधा उत्पन्न कर सकती है। इसके बावजूद अनेक ग्रामीण विद्यार्थी कठिन परिस्थितियों में भी उच्च लक्ष्य निर्धारित करते हैं और सफलता प्राप्त करने के लिए निरंतर प्रयास करते हैं।

दूसरी ओर शहरी क्षेत्र आधुनिक सुविधाओं, तकनीकी संसाधनों तथा शैक्षिक अवसरों से समृद्ध होते हैं। शहरी विद्यार्थियों को विभिन्न प्रकार की शैक्षणिक एवं व्यावसायिक जानकारी आसानी से उपलब्ध हो जाती है। उन्हें प्रतियोगी परीक्षाओं, करियर विकल्पों तथा उच्च शिक्षा के अवसरों के बारे में अधिक जानकारी प्राप्त होती है। इसके परिणामस्वरूप उनके जीवन लक्ष्य अपेक्षाकृत अधिक स्पष्ट और विशिष्ट हो सकते हैं। साथ ही, उन्हें आत्म-अभिव्यक्ति तथा व्यक्तित्व विकास के अधिक अवसर प्राप्त होते हैं, जिससे उनका आत्मविश्वास भी प्रभावित हो सकता है।

हालांकि यह मान लेना उचित नहीं होगा कि केवल शहरी विद्यार्थियों में ही उच्च आत्मविश्वास या स्पष्ट लक्ष्य होते हैं। वर्तमान समय में डिजिटल क्रांति और शिक्षा के प्रसार ने ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों के बीच की दूरी को काफी हद तक कम किया है। इंटरनेट, स्मार्टफोन तथा ऑनलाइन शिक्षण प्लेटफॉर्म ने ग्रामीण विद्यार्थियों को भी नई संभावनाओं से जोड़ दिया है। आज अनेक ग्रामीण विद्यार्थी राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय स्तर पर उत्कृष्ट उपलब्धियाँ प्राप्त कर रहे हैं। इसलिए यह जानना आवश्यक है कि वास्तव में ग्रामीण और शहरी विद्यार्थियों के आत्मविश्वास तथा जीवन लक्ष्य निर्धारण में किस प्रकार की समानताएँ और भिन्नताएँ मौजूद हैं।

मनोवैज्ञानिक शोधों ने यह स्पष्ट किया है कि आत्मविश्वास और लक्ष्य निर्धारण के मध्य सकारात्मक संबंध पाया जाता है। उच्च आत्मविश्वास वाले विद्यार्थी अपने लिए बड़े और चुनौतीपूर्ण लक्ष्य निर्धारित करने का साहस रखते हैं। वे अपनी क्षमताओं पर विश्वास करते हैं और कठिनाइयों के बावजूद अपने उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु प्रयास करते रहते हैं। इसके विपरीत निम्न आत्मविश्वास वाले विद्यार्थी अपने लक्ष्यों को सीमित कर सकते हैं या असफलता के भय से लक्ष्य निर्धारित करने से भी बच सकते हैं। इस प्रकार आत्मविश्वास जीवन लक्ष्य निर्धारण की प्रक्रिया को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करता है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में विद्यार्थियों के समग्र विकास, आत्मनिर्भरता, रचनात्मकता तथा जीवन कौशलों के विकास पर विशेष बल दिया गया है। नीति का उद्देश्य केवल शैक्षणिक उपलब्धि बढ़ाना नहीं है, बल्कि ऐसे विद्यार्थियों का निर्माण करना है जो आत्मविश्वासी, नवाचारी तथा लक्ष्य-उन्मुख हों। इस संदर्भ में आत्मविश्वास और जीवन लक्ष्य निर्धारण का अध्ययन अत्यंत प्रासंगिक हो जाता है। विशेष रूप से ग्रामीण और शहरी विद्यार्थियों के मध्य इन गुणों की तुलना करके शिक्षा प्रणाली की प्रभावशीलता तथा विद्यार्थियों की आवश्यकताओं को बेहतर ढंग से समझा जा सकता है।

समकालीन समाज में प्रतिस्पर्धा का स्तर निरंतर बढ़ रहा है। उच्च शिक्षा, रोजगार, तकनीकी कौशल तथा वैश्विक अवसरों की उपलब्धता ने विद्यार्थियों के सामने अनेक चुनौतियाँ और संभावनाएँ प्रस्तुत की हैं। ऐसे परिवेश में आत्मविश्वास और स्पष्ट जीवन लक्ष्य सफलता की आधारशिला बन जाते हैं। यदि विद्यार्थियों में आत्मविश्वास का विकास किया जाए तथा उन्हें उचित मार्गदर्शन प्रदान किया जाए, तो वे अपने जीवन के लक्ष्यों को अधिक प्रभावी ढंग से निर्धारित कर सकते हैं और उन्हें प्राप्त करने के लिए आवश्यक प्रयास कर सकते हैं।

अतः प्रस्तुत अध्ययन "ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्र के किशोर विद्यार्थियों में आत्मविश्वास एवं जीवन लक्ष्य निर्धारण का तुलनात्मक अध्ययन" इस उद्देश्य से किया जा रहा है कि दोनों परिवेशों के विद्यार्थियों में आत्मविश्वास तथा जीवन लक्ष्य निर्धारण के स्तर का तुलनात्मक विश्लेषण किया जा सके। यह अध्ययन न केवल विद्यार्थियों के मनोवैज्ञानिक विकास को समझने में सहायता करेगा, बल्कि शिक्षकों, अभिभावकों, परामर्शदाताओं एवं शिक्षा-नीति निर्माताओं को भी उपयोगी जानकारी प्रदान करेगा। अध्ययन के निष्कर्षों के आधार पर ऐसे शैक्षिक एवं परामर्श कार्यक्रम विकसित किए जा सकते हैं जो विद्यार्थियों में आत्मविश्वास, सकारात्मक सोच तथा लक्ष्य निर्धारण की क्षमता को सुदृढ़ करें।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि आत्मविश्वास और जीवन लक्ष्य निर्धारण किशोर व्यक्तित्व के दो अत्यंत महत्वपूर्ण आयाम हैं। इनका विकास न केवल व्यक्तिगत सफलता बल्कि सामाजिक और राष्ट्रीय प्रगति के लिए भी आवश्यक है। ग्रामीण और शहरी दोनों क्षेत्रों के विद्यार्थियों में इन गुणों के स्तर को समझना तथा उनकी आवश्यकताओं के अनुरूप शैक्षिक हस्तक्षेप विकसित करना वर्तमान समय की एक महत्वपूर्ण आवश्यकता है।

अध्ययन के उद्देश्य

1. ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्र के किशोर विद्यार्थियों के आत्मविश्वास स्तर का अध्ययन करना।
2. ग्रामीण एवं शहरी विद्यार्थियों के आत्मविश्वास की तुलना करना।
3. ग्रामीण एवं शहरी विद्यार्थियों के जीवन लक्ष्य निर्धारण की तुलना करना।

साहित्य की समीक्षा

Rosenberg (1965)

रोजेनबर्ग ने आत्मविश्वास एवं आत्म-सम्मान को व्यक्तित्व विकास का महत्वपूर्ण घटक माना तथा बताया कि सकारात्मक आत्मधारणा व्यक्ति की उपलब्धियों को प्रभावित करती है।

Bandura (1997)

बंदूरा के आत्म-प्रभावकारिता सिद्धांत के अनुसार व्यक्ति का आत्मविश्वास उसके व्यवहार, प्रयास और उपलब्धि को प्रभावित करता है।

Locke and Latham (2002)

इन शोधकर्ताओं ने लक्ष्य निर्धारण सिद्धांत प्रस्तुत करते हुए बताया कि स्पष्ट और चुनौतीपूर्ण लक्ष्य व्यक्ति की उपलब्धि को बढ़ाते हैं।

Sharma (2016)

भारतीय विद्यार्थियों पर किए गए अध्ययन में पाया गया कि उच्च आत्मविश्वास वाले विद्यार्थियों की शैक्षणिक उपलब्धि अधिक होती है।

Singh and Verma (2018)

अध्ययन में ग्रामीण एवं शहरी विद्यार्थियों के करियर लक्ष्यों में महत्वपूर्ण अंतर पाया गया। शहरी विद्यार्थियों में लक्ष्य स्पष्टता अधिक थी।

Kumar (2020)

अध्ययन के अनुसार आत्मविश्वास और जीवन लक्ष्य निर्धारण के मध्य सकारात्मक संबंध पाया गया।

Mishra and Pandey (2022)

शोध में पाया गया कि ग्रामीण विद्यार्थियों में संसाधनों की कमी के बावजूद जीवन में सफलता प्राप्त करने की उच्च आकांक्षा मौजूद होती है।

कार्य प्रक्रिया

अनुसंधान विधि

वर्तमान अध्ययन में वर्णनात्मक सर्वेक्षण विधि (Descriptive Survey Method) का उपयोग किया गया।

जनसंख्या

जनसंख्या में माध्यमिक एवं उच्च माध्यमिक विद्यालयों के किशोर विद्यार्थी शामिल किए गए।

नमूना

300 विद्यार्थियों का चयन किया गया, जिसमें

- 150 ग्रामीण क्षेत्र से
- 150 शहरी क्षेत्र से

उपकरण

1. आत्मविश्वास मापनी (Self-Confidence Scale)
2. जीवन लक्ष्य निर्धारण प्रश्नावली (Life Goal Setting Inventory)

सांख्यिकीय तकनीक

- माध्य (Mean)
- मानक विचलन (SD)
- t-परीक्षण
- सहसंबंध गुणांक

सारणी 1

ग्रामीण एवं शहरी विद्यार्थियों का आत्मविश्वास स्तर

समूह	N	माध्य	SD
ग्रामीण	150	65.24	8.12
शहरी	150	72.86	7.54

t = 4.67 (महत्वपूर्ण)

सारणी 2
जीवन लक्ष्य निर्धारण स्तर

समूह	N	माध्य	SD
ग्रामीण	150	68.15	7.96
शहरी	150	75.34	7.22

t = 5.12 (महत्वपूर्ण)

सारणी 3
आत्मविश्वास एवं जीवन लक्ष्य निर्धारण का संबंध

चर	सहसंबंध गुणांक (त)
आत्मविश्वास एवं जीवन लक्ष्य निर्धारण	0.71

व्याख्या: दोनों चरों के मध्य उच्च सकारात्मक सहसंबंध पाया गया।

परिणाम

1. शहरी विद्यार्थियों का आत्मविश्वास स्तर ग्रामीण विद्यार्थियों की अपेक्षा अधिक पाया गया।
2. शहरी विद्यार्थियों में जीवन लक्ष्य निर्धारण अधिक स्पष्ट पाया गया।
3. ग्रामीण विद्यार्थियों में भी उच्च आकांक्षाएँ एवं सफलता की प्रबल इच्छा देखी गई।
4. आत्मविश्वास एवं जीवन लक्ष्य निर्धारण के मध्य सकारात्मक संबंध पाया गया।
5. उच्च आत्मविश्वास वाले विद्यार्थियों में लक्ष्य निर्धारण की स्पष्टता अधिक पाई गई।
6. संसाधनों एवं अवसरों की उपलब्धता विद्यार्थियों के आत्मविश्वास और लक्ष्य निर्माण को प्रभावित करती है।

विवेचना

अध्ययन के निष्कर्ष यह संकेत करते हैं कि विद्यार्थियों के आत्मविश्वास और जीवन लक्ष्य निर्धारण पर सामाजिक एवं शैक्षिक परिवेश का प्रभाव पड़ता है। शहरी विद्यार्थियों को करियर मार्गदर्शन, तकनीकी संसाधन तथा विविध अवसर अधिक उपलब्ध होने के कारण उनमें आत्मविश्वास और लक्ष्य स्पष्टता अपेक्षाकृत अधिक पाई गई।

ग्रामीण विद्यार्थियों में संसाधनों की सीमाएँ होने के बावजूद जीवन में सफलता प्राप्त करने की आकांक्षा मजबूत देखी गई। यह निष्कर्ष दर्शाता है कि अवसरों की उपलब्धता लक्ष्य निर्धारण को प्रभावित करती है, परंतु आकांक्षाएँ केवल संसाधनों पर निर्भर नहीं होतीं।

आत्मविश्वास और जीवन लक्ष्य निर्धारण के मध्य पाया गया सकारात्मक संबंध यह स्पष्ट करता है कि जो विद्यार्थी अपनी क्षमताओं पर विश्वास रखते हैं, वे अपने भविष्य के लिए अधिक स्पष्ट और यथार्थवादी लक्ष्य निर्धारित करते हैं। इसी प्रकार स्पष्ट लक्ष्य रखने वाले विद्यार्थियों में आत्मविश्वास भी बढ़ता है क्योंकि उन्हें अपने प्रयासों की दिशा स्पष्ट होती है।

अध्ययन के निष्कर्ष Bandura (1997) के आत्म-प्रभावकारिता सिद्धांत तथा Locke एवं Latham (2002) के लक्ष्य निर्धारण सिद्धांत का समर्थन करते हैं।

निष्कर्ष

प्रस्तुत अध्ययन से यह निष्कर्ष निकलता है कि ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्र के किशोर विद्यार्थियों में आत्मविश्वास तथा जीवन लक्ष्य निर्धारण के स्तर में महत्वपूर्ण अंतर पाया जाता है। शहरी विद्यार्थियों का आत्मविश्वास और लक्ष्य स्पष्टता अपेक्षाकृत अधिक पाई गई, जबकि ग्रामीण विद्यार्थियों में भी उच्च आकांक्षाएँ एवं सफलता प्राप्त करने की तीव्र इच्छा विद्यमान थी।

अध्ययन से यह भी स्पष्ट हुआ कि आत्मविश्वास और जीवन लक्ष्य निर्धारण के मध्य सकारात्मक एवं महत्वपूर्ण संबंध पाया जाता है। अतः विद्यालयों में विद्यार्थियों के आत्मविश्वास के विकास, करियर मार्गदर्शन तथा लक्ष्य निर्धारण संबंधी कार्यक्रमों का आयोजन किया जाना चाहिए। विशेष रूप से ग्रामीण क्षेत्रों में शैक्षिक संसाधनों और मार्गदर्शन सुविधाओं का विस्तार विद्यार्थियों के व्यक्तित्व विकास में महत्वपूर्ण योगदान दे सकता है।

संदर्भ सूची

- Bandura, A. (1997). *Self-efficacy: The exercise of control*. W. H. Freeman.
- Kumar, R. (2020). Self-confidence and life goals among adolescents. *Indian Journal of Educational Research*, 15(2), 45–58.
- Locke, E. A., & Latham, G. P. (2002). Building a practically useful theory of goal setting and task motivation. *American Psychologist*, 57(9), 705–717.
- Mishra, S., & Pandey, R. (2022). Aspirations and goal setting among rural adolescents. *Journal of Educational Development*, 18(3), 87–101.
- Rosenberg, M. (1965). *Society and the adolescent self-image*. Princeton University Press.
- Sharma, P. (2016). Self-confidence and academic achievement among secondary school students. *Indian Educational Review*, 52(1), 34–46.
- Singh, A., & Verma, K. (2018). Comparative study of career aspirations among rural and urban students. *International Journal of Education and Psychology*, 6(2), 55–67.
- UNESCO. (2023). *Global education monitoring report 2023*. UNESCO Publishing.
- World Health Organization. (2022). *Adolescent development and well-being*. WHO Publications.
- Yadav, R., & Gupta, S. (2021). Goal orientation and self-confidence among adolescents. *Journal of Psychological Studies*, 29(4), 112–125.



जमानिया विकास खंड में ग्रामीण विकास कार्यक्रमों के सामाजिक-आर्थिक प्रभावों का भौगोलिक अध्ययन

डॉ. अभिषेक कुमार सिंह*

सारांश (Abstract)

ग्रामीण विकास भारत की विकास प्रक्रिया का एक महत्वपूर्ण अंग है। स्वतंत्रता के बाद से ग्रामीण क्षेत्रों के आर्थिक, सामाजिक एवं अवसंरचनात्मक विकास हेतु अनेक योजनाएँ संचालित की गई हैं। जमानिया विकास खंड (जनपद गाजीपुर, उत्तर प्रदेश) में भी विभिन्न ग्रामीण विकास कार्यक्रमों जैसे महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम (मनरेगा), प्रधानमंत्री आवास योजना (ग्रामीण), राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन, स्वच्छ भारत मिशन तथा प्रधानमंत्री ग्राम सड़क योजना का क्रियान्वयन किया गया है। प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य इन कार्यक्रमों के सामाजिक-आर्थिक प्रभावों का भौगोलिक दृष्टिकोण से विश्लेषण करना है। अध्ययन से ज्ञात होता है कि ग्रामीण विकास कार्यक्रमों ने रोजगार, आय, आवास, आधारभूत सुविधाओं एवं महिला सशक्तिकरण में सकारात्मक योगदान दिया है, किन्तु योजनाओं के प्रभाव में क्षेत्रीय असमानताएँ भी विद्यमान हैं।

मुख्य शब्द (Keywords): ग्रामीण विकास, जमानिया विकास खंड, सामाजिक-आर्थिक परिवर्तन, मनरेगा, महिला सशक्तिकरण, भौगोलिक अध्ययन

प्रस्तावना

भारत की लगभग दो-तिहाई जनसंख्या ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करती है। ग्रामीण विकास का तात्पर्य ग्रामीण क्षेत्रों में जीवन स्तर, आय, रोजगार, शिक्षा, स्वास्थ्य तथा आधारभूत सुविधाओं में सुधार से है। ग्रामीण विकास कार्यक्रमों का मुख्य उद्देश्य गरीबी उन्मूलन, रोजगार सृजन तथा सामाजिक न्याय सुनिश्चित करना है।

जमानिया विकास खंड, गाजीपुर जनपद का एक महत्वपूर्ण क्षेत्र है जहाँ कृषि प्रमुख आर्थिक गतिविधि है। इस क्षेत्र में संचालित विभिन्न ग्रामीण विकास योजनाओं का ग्रामीण जीवन पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ा है। इसलिए इन कार्यक्रमों के प्रभावों का भौगोलिक अध्ययन आवश्यक है।

अध्ययन क्षेत्र का परिचय

जमानिया विकास खंड उत्तर प्रदेश के गाजीपुर जनपद के पूर्वी भाग में स्थित है। यह क्षेत्र गंगा नदी के निकट अवस्थित है।

भौगोलिक विशेषताएँ

- अक्षांश: लगभग 25°25' से 25°40' उत्तरी
- देशांतर: 83°30' से 83°45' पूर्वी
- मुख्य व्यवसाय: कृषि एवं कृषि आधारित गतिविधियाँ
- प्रमुख फसलें: धान, गेहूँ, दलहन एवं तिलहन

अध्ययन के उद्देश्य

- जमानिया विकास खंड में संचालित प्रमुख ग्रामीण विकास कार्यक्रमों का अध्ययन करना।
- ग्रामीण विकास कार्यक्रमों के सामाजिक प्रभावों का विश्लेषण करना।
- ग्रामीण विकास कार्यक्रमों के आर्थिक प्रभावों का मूल्यांकन करना।

* भूतपूर्व शोध छात्र, भूगोल विभाग, वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालय, जौनपुर, उ.प्र.

30 जमानिया विकास खंड में ग्रामीण विकास कार्यक्रमों के सामाजिक-आर्थिक प्रभावों का भौगोलिक अध्ययन

4. विकास कार्यक्रमों के क्षेत्रीय प्रभावों का भौगोलिक अध्ययन करना।

शोध पद्धति

प्रस्तुत अध्ययन वर्णनात्मक एवं विश्लेषणात्मक शोध पद्धति पर आधारित है।

आंकड़ों के स्रोत

प्राथमिक स्रोत

- प्रश्नावली
- साक्षात्कार
- क्षेत्रीय सर्वेक्षण

द्वितीयक स्रोत

- जनगणना रिपोर्ट
- ग्रामीण विकास मंत्रालय की रिपोर्ट
- गाजीपुर जिला सांख्यिकी पत्रिका
- शोध पत्र एवं पुस्तकें

ग्रामीण विकास कार्यक्रम

1. महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम (मनरेगा)

मनरेगा ग्रामीण परिवारों को प्रतिवर्ष 100 दिनों का रोजगार उपलब्ध कराता है। जमानिया क्षेत्र में इस योजना ने रोजगार सृजन एवं पलायन नियंत्रण में सहायता की है।

2. प्रधानमंत्री आवास योजना (ग्रामीण)

इस योजना के माध्यम से गरीब परिवारों को पक्के आवास उपलब्ध कराए गए हैं जिससे जीवन स्तर में सुधार हुआ है।

3. राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन

स्वयं सहायता समूहों के माध्यम से महिलाओं को आर्थिक रूप से सशक्त बनाया गया है।

4. स्वच्छ भारत मिशन

ग्रामीण क्षेत्रों में शौचालय निर्माण एवं स्वच्छता जागरूकता को बढ़ावा मिला है।

5. प्रधानमंत्री ग्राम सड़क योजना

ग्रामीण क्षेत्रों को मुख्य सड़कों से जोड़कर आवागमन एवं बाजार संपर्क में वृद्धि की गई है।

सामाजिक प्रभाव

शिक्षा

विद्यालयों तक पहुँच बेहतर हुई है। सड़क एवं परिवहन सुविधाओं के विकास से विद्यालयों में उपस्थिति बढ़ी है।

स्वास्थ्य

स्वास्थ्य केंद्रों तक पहुँच आसान हुई है। स्वच्छता कार्यक्रमों के कारण जलजनित रोगों में कमी आई है।

महिला सशक्तिकरण

स्वयं सहायता समूहों के माध्यम से महिलाओं की आर्थिक एवं सामाजिक स्थिति में सुधार हुआ है।

सामाजिक जागरूकता

सरकारी योजनाओं के माध्यम से ग्रामीणों में शिक्षा, स्वास्थ्य एवं स्वच्छता के प्रति जागरूकता बढ़ी है।

आर्थिक प्रभाव**रोजगार सृजन**

मनरेगा के माध्यम से ग्रामीण बेरोजगारी में कमी आई है।

आय में वृद्धि

कृषि एवं गैर-कृषि गतिविधियों से आय के स्रोतों में वृद्धि हुई है।

कृषि विकास

सिंचाई, सड़क एवं बाजार सुविधाओं में सुधार से कृषि उत्पादकता बढ़ी है।

पलायन में कमी

स्थानीय स्तर पर रोजगार उपलब्ध होने से मजदूरों का बाहरी राज्यों की ओर पलायन कम हुआ है।

भौगोलिक विश्लेषण

जमानिया विकास खंड के विभिन्न ग्राम पंचायतों में ग्रामीण विकास कार्यक्रमों के प्रभाव समान नहीं हैं।

- सड़क से जुड़े गाँवों में विकास अधिक हुआ है।
- दूरस्थ गाँवों में योजनाओं का प्रभाव अपेक्षाकृत कम देखा गया।
- महिला स्वयं सहायता समूहों की सक्रियता वाले क्षेत्रों में सामाजिक विकास अधिक पाया गया।

इस प्रकार विकास का वितरण स्थानिक रूप से असमान है।

प्रमुख निष्कर्ष

1. ग्रामीण विकास कार्यक्रमों ने रोजगार एवं आय में वृद्धि की है।
2. आवास एवं आधारभूत सुविधाओं की स्थिति में सुधार हुआ है।
3. महिला सशक्तिकरण को बढ़ावा मिला है।
4. स्वास्थ्य एवं स्वच्छता स्तर में सुधार हुआ है।
5. विकास के लाभ सभी क्षेत्रों में समान रूप से नहीं पहुँचे हैं।

सुझाव

1. योजनाओं के प्रभावी क्रियान्वयन हेतु निगरानी प्रणाली को मजबूत किया जाए।
2. दूरस्थ गाँवों को विकास कार्यक्रमों में प्राथमिकता दी जाए।
3. स्वयं सहायता समूहों को अधिक वित्तीय सहायता प्रदान की जाए।
4. ग्रामीण युवाओं के लिए कौशल विकास कार्यक्रम संचालित किए जाएँ।
5. डिजिटल साक्षरता को बढ़ावा दिया जाए।

निष्कर्ष

जमानिया विकास खंड में ग्रामीण विकास कार्यक्रमों ने सामाजिक एवं आर्थिक विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। रोजगार, आवास, शिक्षा, स्वास्थ्य तथा महिला सशक्तिकरण के क्षेत्र में सकारात्मक परिवर्तन देखने को मिले हैं। तथापि विकास के लाभों का समान वितरण सुनिश्चित करने हेतु योजनाओं के बेहतर क्रियान्वयन एवं सतत निगरानी की आवश्यकता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. Singh, K. (2019). *Rural Development: Principles, Policies and Management*. Sage Publications.
2. Desai, V. (2020). *Rural Development in India*. Himalaya Publishing House.
3. Sharma, R. N. (2018). *ग्रामीण विकास एवं नियोजन*. जयपुर: रावत पब्लिकेशन्स।
4. Datt, R., & Sundharam, K. P. M. (2021). *Indian Economy*. S. Chand Publishing.

32 जमानिया विकास खंड में ग्रामीण विकास कार्यक्रमों के सामाजिक-आर्थिक प्रभावों का भौगोलिक अध्ययन

5. Ministry of Rural Development. (2023). *Annual Report 2022-23*. Government of India, New Delhi.
6. Census of India. (2011). *District Census Handbook: Ghazipur*. Office of the Registrar General, India.
7. Singh, C. (2017). *ग्रामीण समाजशास्त्र*. नई दिल्ली: विवेक प्रकाशन।
8. Uttar Pradesh Economic and Statistics Division. (2023). *Statistical Diary of Uttar Pradesh*. Lucknow.
9. Kumar, A. (2022). "Impact of MGNREGA on Rural Employment in India." *Indian Journal of Rural Development*, 41(2), 145-158.
10. Yadav, P., & Singh, R. (2021). "Role of Self Help Groups in Women Empowerment." *Journal of Rural Studies*, 12(3), 65-78.
11. Mishra, S. N. (2019). *ग्रामीण विकास के आयाम*. नई दिल्ली: ओरिएंट ब्लैकस्वान।
12. Government of Uttar Pradesh. (2024). *गाजीपुर जनपद सांख्यिकीय पत्रिका*. लखनऊ: अर्थ एवं संख्या विभाग।



जनजागरण सम्बन्धित आधुनिक काव्यधारा में नागार्जुन का स्थान

डॉ. संगीता कुमारी*

सारांश:

आधुनिक हिन्दी कविता में जनजागरण की धारा केवल राजनीतिक चेतना या राष्ट्रीय आवेग का नाम नहीं है; वह भूख, श्रम, जाति, किसान-जीवन, सत्ता-समीक्षा और लोकतांत्रिक नैतिकता को कविता के केंद्र में रखने वाली व्यापक सांस्कृतिक प्रक्रिया है। नागार्जुन इस प्रक्रिया के ऐसे कवि हैं जिनके यहाँ “जन” कविता का विषय मात्र नहीं, बल्कि कविता का वक्ता, श्रोता और नैतिक निर्णायक भी है। प्रस्तुत शोधपत्र नागार्जुन की कविताओं में जनजागरण की अवधारणा, लोकभाषा की शक्ति, व्यंग्य की राजनीतिक भूमिका, अकाल और जातीय अन्याय की काव्यात्मक अभिव्यक्ति तथा आधुनिक काव्यधारा में उनके विशिष्ट स्थान का विश्लेषण करता है। लेख का प्रतिपाद्य यह है कि नागार्जुन ने जनवादी कविता को घोषणात्मकता से बचाकर उसे अनुभव, प्रतिरोध और लोक-संवाद की ऊष्मा दी।

बीज-शब्द: नागार्जुन, जनजागरण, आधुनिक काव्यधारा, जनकाव्य, व्यंग्य, लोकभाषा, बहुजन, प्रगतिशील चेतना।

१. प्रस्तावना: जनजागरण और आधुनिक कविता

हिन्दी साहित्य में जनजागरण की परम्परा उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से राष्ट्रीय चेतना, सामाजिक सुधार और भाषा-जागरण के रूप में विकसित होती है। भारतेन्दु युग में यह चेतना औपनिवेशिक सत्ता, सांस्कृतिक हीनता और सामाजिक जड़ता के प्रतिरोध में दिखाई देती है; द्विवेदी युग में उसका रूप नैतिक-सुधारवादी और राष्ट्रोन्मुख होता है; छायावाद में व्यक्ति की अंतःचेतना और स्वाधीनता-बोध उसका नया आयाम बनते हैं; और प्रगतिशील-जनवादी काव्यधारा में वही चेतना किसान, मजदूर, दलित, स्त्री और शोषित समुदायों की भौतिक स्थितियों से जुड़ती है। नागार्जुन इसी विस्तृत परम्परा में ऐसे कवि हैं जो जागरण को केवल विचार के रूप में नहीं, बल्कि सामूहिक अनुभव की भाषा में घटित करते हैं।

नागार्जुन का महत्व इस बात में है कि वे जनता के लिए लिखने की सामान्य सदिच्छा से आगे बढ़कर जनता के भीतर से बोलते हैं। उनकी कविता में गाँव की धूल, अकाल का धुआँ, जेल का अनुभव, आंदोलन का ताप, सड़क की आक्रोशपूर्ण आवाज और सत्ता पर हँसती हुई लोक-बुद्धि उपस्थित है। इसलिए उनका जनजागरण बौद्धिक उपदेश नहीं, बल्कि देखने, बोलने, पहचानने और प्रतिरोध करने की सामूहिक क्षमता का निर्माण है। राजेश जोशी ने नागार्जुन की काव्य-परम्परा को नज़ीर और भारतेन्दु की मिली-जुली विरासत से जोड़ते हुए उसकी सहज संप्रेषणीयता, नाटकीयता और जागृत राजनीतिक चेतना की ओर ध्यान दिलाया है।¹

२. जीवनानुभव और जनपक्षधरता की जमीन

नागार्जुन की काव्य-दृष्टि पुस्तकालयी प्रगतिशीलता से नहीं बनी; उसके पीछे यात्राएँ, किसान-आंदोलन, जेल-जीवन, लोक-संपर्क और बहुभाषिक अभ्यास की दीर्घ प्रक्रिया है। साहित्य अकादेमी द्वारा प्रकाशित रचना-संचयन की भूमिका में उनके स्वामी सहजानन्द सरस्वती से जुड़ने, किसान-आंदोलन में सक्रिय भागीदारी करने

* सहायक प्राध्यापक (अतिथि), हिंदी विभाग, राम जयपाल कॉलेज, छपरा, जेपीयू

Email - sangeetakumari9406@gmail.com

¹ राजेश जोशी, भूमिका, नागार्जुन रचना संचयन, साहित्य अकादेमी, नई दिल्ली, पृ. १४-१५।

और जेल-यात्राओं का उल्लेख किया गया है। इस जीवनानुभव ने उनकी कविता को नारा बनने से बचाया और उसे जमीनी सचाइयों से जोड़े रखा।²

जनजागरण के लिए कवि की पहली आवश्यकता है कि वह जनता को वस्तु की तरह न देखे। नागार्जुन में यह दूरी टूटती है। वे किसान की बेबसी को बाहरी दृष्टि से नहीं, उसके घरेलू सामान, पशु, आँगन, धुआँ और भूख के बीच से देखते हैं। वे राजसत्ता की आलोचना विचारधारात्मक घोषणाओं से उतनी नहीं करते जितनी लोक-व्यंग्य, ठिठोली, उलटबाँसी और बोलचाल की तीखी सरलता से करते हैं। इसी कारण उनकी कविता पढ़ने वाले को ज्ञान देती ही नहीं, उसे जागरूक होने की भाषा भी देती है।

3. प्रतिबद्धता की काव्य-नैतिकता

नागार्जुन के यहाँ प्रतिबद्धता किसी संकीर्ण दलगत आग्रह का नाम नहीं है। वह बहुजन समाज, जनहित और परिवर्तनकारी ऐतिहासिक चेतना से संबंध का नाम है। “प्रतिबद्ध” कविता में कवि स्वयं अपने काव्य-कर्तव्य का उद्घोष करता है:

“प्रतिबद्ध हूँ
संबद्ध हूँ
आबद्ध हूँ
प्रतिबद्ध हूँ, जी हाँ, प्रतिबद्ध हूँ
बहुजन समाज की अनुपल प्रगति के निमित्त...”³

इन पंक्तियों में “प्रतिबद्ध”, “संबद्ध” और “आबद्ध” की आवृत्ति महज अलंकार नहीं है। यह कवि के संबंध-बोध की त्रिस्तरीयता है। वह विचार से प्रतिबद्ध है, जनता से संबद्ध है और इतिहास के संघर्षों से आबद्ध है। “बहुजन समाज” का प्रयोग इस प्रतिबद्धता को व्यापक सामाजिक धरातल देता है। यहाँ जनजागरण का केंद्र “लोक-कल्याण” की अमूर्त भाषा नहीं, बल्कि बहुसंख्यक शोषित समाज की ठोस प्रगति है। नागार्जुन की आधुनिकता इसी में है कि वे कविता को निजी भावुकता के एकांत से निकालकर सामाजिक उत्तरदायित्व के खुले मैदान में लाते हैं।

ऐसी प्रतिबद्धता में आत्म-आलोचना की गुंजाइश भी रहती है। नागार्जुन किसी एक स्थिर मुद्रा में बंद कवि नहीं हैं। वे समय-समय पर राजनीतिक नेतृत्व, सत्ता, दल, बौद्धिक वर्ग और स्वयं जन-आंदोलनों की कमजोरियों पर भी प्रहार करते हैं। इस दृष्टि से उनकी जनवादी कविता उपदेशात्मक न होकर बहसपरक है। उसमें सहमति के साथ असहमति, करुणा के साथ व्यंग्य और आशा के साथ क्रोध साथ-साथ चलते हैं।

4. अकाल, भूख और जन-इतिहास का सौंदर्यशास्त्र

जनजागरण की कविता का एक बड़ा प्रश्न यह है कि वह भूख जैसी कठोर सामाजिक वास्तविकता को किस तरह व्यक्त करे। सामान्य करुणा अक्सर भूख को भावुक बना देती है, पर नागार्जुन उसे जीवन के वस्तुगत दृश्य में रूपांतरित करते हैं। “अकाल और उसके बाद” में भूख घर के निर्जीव उपकरणों और छोटे जीवों तक फैल जाती है:

“कई दिनों तक चूल्हा रोया चक्की रही उदास
कई दिनों तक कानी कुतिया सोई उनके पास

² राजेश जोशी, भूमिका, नागार्जुन रचना संचयन, साहित्य अकादेमी, नई दिल्ली, पृ. १०-११।

³ नागार्जुन, ‘प्रतिबद्ध’, नागार्जुन रचना संचयन, भूमिका एवं चयन: राजेश जोशी, साहित्य अकादेमी, नई दिल्ली, पृ. १९।

कई दिनों तक लगी भीत पर छिपकलियों की गश्त

कई दिनों तक चूहों की भी हालत रही शिकस्त⁴

इन पंक्तियों में मनुष्य प्रत्यक्ष नहीं है, फिर भी मनुष्य की त्रासदी सर्वाधिक तीव्र रूप में उपस्थित है। चूल्हा, चक्की, कुतिया, छिपकली और चूहे घरेलू जीवन के वे संकेत हैं जिनमें अकाल का इतिहास दर्ज है। कविता जनजागरण का काम इसलिए करती है कि वह पाठक को आँकड़ों से परे उस जीवन-संसार में ले जाती है जहाँ भूख केवल पेट की अवस्था नहीं, पूरी गृह-संरचना की मृत्यु है। पुनरुक्ति “कई दिनों तक” समय को लंबा, पीड़ादायक और सामूहिक बनाती है।

अकाल की समाप्ति को भी कवि किसी भव्य उत्सव के रूप में नहीं, छोटे घरेलू कंपन के रूप में दिखाता है:

“दाने आए घर के अंदर कई दिनों के बाद

धुआँ उठा आँगन से ऊपर कई दिनों के बाद

चमक उठी घर-भर की आँखें कई दिनों के बाद

कोए ने खुजलाई पाँखें कई दिनों के बाद⁵

यहाँ अन्न का आगमन इतिहास की वापसी है। “धुआँ” केवल रसोई का धुआँ नहीं, जीवन की पुनर्प्राप्ति का संकेत है। “कोए” का शामिल होना कविता की लोक-दृष्टि को पुष्ट करता है; जनजीवन मनुष्य तक सीमित नहीं, उसके साथ रहने वाले जीव-जगत तक विस्तृत है। नागार्जुन का जनजागरण इसी संवेदनात्मक विस्तार से बनता है।

५. सत्ता-विरोध और राजनीतिक व्यंग्य

नागार्जुन की राजनीतिक कविता का बड़ा गुण यह है कि वह सत्ता को भयावहता के साथ-साथ हास्यास्पद भी बनाती है। सत्ता की बंदूक जनता के विरुद्ध खड़ी हो सकती है, पर कवि की दृष्टि उसके आतंक को नैतिक रूप से नंगा कर देती है। “शासन की बंदूक” में सत्ता का हिंसक रूप इस प्रकार सामने आता है:

“खड़ी हो गई चाँप कर कंकालों की हूक

नभ में विपुल विराट-सी शासन की बंदूक

उस हिटलरी गुमान पर सभी रहे हैं थूक

जिसमें कानी हो गई शासन की बंदूक⁶

इन पंक्तियों में “कंकालों की हूक” जनता की अस्थि-मज्जा तक पहुँची पीड़ा है, और “शासन की बंदूक” राज्य-हिंसा का प्रतीक। लेकिन कविता केवल भय का दृश्य नहीं रचती; “कानी हो गई” जैसे लोक-प्रयोग से बंदूक की दहशत टूटती है। जनजागरण का अर्थ यहाँ भय-भंग है। जनता सत्ता को देवत्व से उतारकर मनुष्य के न्याय-बोध के सामने खड़ा देखती है।

स्वतंत्रता के बाद का भारत नागार्जुन की कविता में एक विरोधाभासी स्थल है। औपनिवेशिक शासन समाप्त हो चुका है, पर शासक-वर्ग की औपनिवेशिक मानसिकता, राजसी आतिथ्य और जनता से दूरी बनी हुई है। “आओ रानी, हम ढोएँगे पालकी” इसी विडंबना का तीखा व्यंग्य है:

⁴ नागार्जुन, ‘अकाल और उसके बाद’, नागार्जुन रचना संचयन, भूमिका एवं चयन: राजेश जोशी, साहित्य अकादेमी, नई दिल्ली, पृ. १००।

⁵ नागार्जुन, ‘अकाल और उसके बाद’, नागार्जुन रचना संचयन, भूमिका एवं चयन: राजेश जोशी, साहित्य अकादेमी, नई दिल्ली, पृ. १००।

⁶ नागार्जुन, ‘शासन की बंदूक’, नागार्जुन रचना संचयन, भूमिका एवं चयन: राजेश जोशी, साहित्य अकादेमी, नई दिल्ली, पृ. १३५।

“आओ रानी, हम ढोएँगे पालकी,
यही हुई है राय जवाहरलाल की
रफू करेंगे फटे-पुराने जाल की
यही हुई है राय जवाहरलाल की”⁷

यह कविता राष्ट्रीय नेतृत्व की अंध-आस्था पर प्रहार करती है। पालकी ढोने का दृश्य सामंती-औपनिवेशिक अधीनता का दृश्य है। आज़ादी के बाद भी यदि जनता “ढोने” की भूमिका में रखी जाती है, तो स्वतंत्रता का अर्थ अधूरा रह जाता है। नागार्जुन की कविता जनता को यह अधूरापन पहचानने की दृष्टि देती है। वे सत्ता-भाषा की औपचारिक गरिमा को तोड़कर उसे लोक-हँसी में बदल देते हैं। यह हँसी विनोद नहीं, राजनीतिक शिक्षा है।

“बाकी बच गया अंडा” में भी राजनीतिक दमन और राष्ट्रवादी प्रतीकों की विडंबना लोक-कथा जैसी संरचना में खुलती है:

“एक पूत भारतमाता का, कंधे पर है झंडा
पुलिस पकड़ के जेल ले गई, बाकी बच गया अंडा”⁸

यहाँ “भारत माता”, “झंडा”, “पुलिस” और “जेल” जैसे संकेत स्वतंत्रता-उत्तर राजनीतिक यथार्थ को व्यंग्यात्मक रूप में संगठित करते हैं। जनजागरण की दृष्टि से यह कविता बताती है कि राष्ट्र का प्रतीक यदि जनता के अधिकारों से कट जाए, तो वह खोखला अनुष्ठान बन जाता है।

६. गांधीवादी प्रतीकों का पुनर्पाठ और नैतिक विडंबना

नागार्जुन का व्यंग्य किसी विशेष नेता या प्रसंग तक सीमित नहीं है; वह उस नैतिक भाषा को भी परखता है जिसे सत्ता-समर्थक वर्ग अपने हित में इस्तेमाल करता है। “तीनों बंदर बापू के” में गांधीवादी प्रतीक सत्ता और सेठों के हित-साधन का उपकरण बनते दिखते हैं:

“बापू के भी ताऊ निकले तीनों बंदर बापू
सरल सूत्र उलझाऊ निकले तीनों बंदर बापू के
सेठों का हित साध रहे हैं तीनों बंदर बापू के
सत्य अहिंसा फाँक रहे हैं तीनों बंदर बापू के”⁹

इस कविता का उद्देश्य गांधी को अस्वीकार करना नहीं, बल्कि गांधीवादी नैतिकता के संस्थागत उपभोग को बेनकाब करना है। “सत्य” और “अहिंसा” जैसी धारणाएँ यदि सामाजिक न्याय से कटकर सेठों के हित-साधन में लगें, तो वे जागरण के बजाय निद्रा पैदा करती हैं। नागार्जुन ऐसी निद्रा तोड़ते हैं। वे बताते हैं कि जनजागरण केवल राजनीतिक सत्ता की आलोचना नहीं; वह उन पवित्र प्रतीकों की भी जाँच है जिनके पीछे अन्याय छिप सकता है।

७. जाति, हिंसा और मानव-गरिमा

नागार्जुन की जनचेतना वर्गीय शोषण तक सीमित नहीं रहती। जाति-आधारित हिंसा और मानवीय अपमान भी उनकी कविता में गहरी बेचैनी के साथ आते हैं। “हरिजन-गाथा” शीर्षक अपने समय की सामाजिक

⁷ नागार्जुन, ‘आओ रानी, हम ढोएँगे पालकी’, नागार्जुन रचना संचयन, भूमिका एवं चयन: राजेश जोशी, साहित्य अकादेमी, नई दिल्ली, पृ. १५०।

⁸ नागार्जुन, ‘बाकी बच गया अंडा’, नागार्जुन रचना संचयन, भूमिका एवं चयन: राजेश जोशी, साहित्य अकादेमी, नई दिल्ली, पृ. १३६।

⁹ नागार्जुन, ‘तीनों बंदर बापू के’, नागार्जुन रचना संचयन, भूमिका एवं चयन: राजेश जोशी, साहित्य अकादेमी, नई दिल्ली, पृ. १५४-१५५।

शब्दावली के भीतर लिखा गया है, पर कविता का उद्देश्य उत्पीड़ित समुदायों के विरुद्ध हिंसा को इतिहास के केंद्र में लाना है। वह लिखते हैं:

“ऐसा तो कभी नहीं हुआ था कि
हरिजन-माताएँ अपने भूणों के जनकों को
खो चुकी हों एक पैशाचिक दुष्कांड में”¹⁰

इन पंक्तियों की भयावहता इस बात में है कि हिंसा केवल वर्तमान पीढ़ी पर नहीं, अजन्मे भविष्य पर भी घटित होती है। “भूणों के जनक” का विलोप समाज की पीढ़ीगत निरंतरता पर हमला है। नागार्जुन यहाँ करुणा को सामाजिक अभियोग में बदलते हैं। इस कविता में जनजागरण का अर्थ पीड़ा के साथ नैतिक साक्ष्य जुटाना है, ताकि अन्याय इतिहास की हाशिया-टिप्पणी न रह जाए।

८. भाषा, छंद और लोक-संवाद

नागार्जुन की विशेषता केवल विषय-वस्तु में नहीं, भाषा और शिल्प में भी है। वे संस्कृत-प्रचुर गंभीरता, लोकभाषा, बोलचाल, व्यंग्यात्मक मुहावरा, गीत, कथ्य-लय, दोहा-छंद, मुक्त छंद और घोषणात्मक आवृत्तियों का अद्भुत मिश्रण करते हैं। राजेश जोशी ने इस बात पर बल दिया है कि निराला के बाद नागार्जुन अकेले ऐसे कवि हैं जिन्होंने इतने छंदों और रूपों में सफलतापूर्वक हस्तक्षेप किया। यह बहुरूपता जनजागरण की दृष्टि से निर्णायक है, क्योंकि अलग-अलग लोक-समूहों तक पहुँचने के लिए कविता को एक ही काव्य-भाषा में बंद नहीं रहना चाहिए।¹¹

नागार्जुन की भाषा में किसान-मजदूर की बोली, सड़क की तीखी टिप्पणी, गाँव की कहावत, बाजार की चुटकी और संस्कृतनिष्ठ गंभीरता सब साथ आ जाते हैं। रामविलास शर्मा ने उनकी भाषा को किसान-मजदूर की भाषा से जुड़ा बताया है और यह माना है कि मैथिली तथा संस्कृत पर अधिकार के कारण उसमें अतिरिक्त वैविध्य आया। यही कारण है कि नागार्जुन की कविता उच्च साहित्य और लोकवाणी के बीच बने कृत्रिम अंतर को तोड़ती है।¹²

जनजागरण में भाषा की भूमिका केवल संप्रेषण नहीं, सहभागिता है। नागार्जुन पाठक को “समझाते” भर नहीं; वे उसे बोलने की शैली भी देते हैं। “आओ रानी” जैसी कविता पाठक के मुँह में चढ़ जाती है; “अकाल और उसके बाद” जैसी कविता स्मृति में लोकगीत की तरह टिकती है; “प्रतिबद्ध” जैसी कविता नैतिक संकल्प का स्वर बनती है। इस तरह भाषा विचार को जन-संस्कार में बदलती है।

९. आधुनिक काव्यधारा में नागार्जुन का स्थान

आधुनिक हिन्दी कविता में नागार्जुन का स्थान कई स्तरों पर निर्धारित होता है। प्रथम, वे छायावादोत्तर कविता को जनजीवन के कठोर यथार्थ से जोड़ते हैं, पर उसे सूखी समाजशास्त्रीय भाषा में नहीं बदलते। द्वितीय, वे प्रगतिशील कविता की सामाजिक प्रतिबद्धता को लोकभाषा और व्यंग्य की रचनात्मक ऊर्जा देते हैं। तृतीय, वे स्वतंत्रता-उत्तर भारत की राजनीतिक विडंबनाओं को तत्कालीन पत्रकारिता की तात्कालिकता से ऊपर उठाकर काव्य-स्मृति का अंग बना देते हैं। चतुर्थ, वे जन को केवल पीड़ित नहीं दिखाते; जन में हँसने, पहचानने, प्रतिरोध करने और इतिहास बनाने की शक्ति भी देखते हैं।

¹⁰ नागार्जुन, ‘हरिजन-गाथा’, नागार्जुन रचना संचयन, भूमिका एवं चयन: राजेश जोशी, साहित्य अकादेमी, नई दिल्ली, पृ. १६४।

¹¹ राजेश जोशी, भूमिका, नागार्जुन रचना संचयन, साहित्य अकादेमी, नई दिल्ली, पृ. १२।

¹² रामविलास शर्मा का मत, राजेश जोशी द्वारा उद्धृत, भूमिका, नागार्जुन रचना संचयन, साहित्य अकादेमी, नई दिल्ली, पृ. १४।

उनका संबंध कबीर, नज़ीर, भारतेन्दु और निराला की व्यापक परम्परा से जोड़ा जा सकता है। कबीर की तरह वे सत्ता और पाखंड पर चोट करते हैं; नज़ीर की तरह वे लोक-जीवन के साधारण पदार्थों को काव्य का विषय बनाते हैं; भारतेन्दु की तरह वे राजनीतिक-सामाजिक विडंबना को सार्वजनिक भाषा देते हैं; और निराला की तरह वे काव्य-रूपों में निरंतर प्रयोग करते हैं। पर नागार्जुन की अपनी विशिष्टता यह है कि वे इन सबको किसानों, मजदूरों, वंचितों और राजनीतिक रूप से ठगे गए नागरिकों की आवाज में ढालते हैं।

जनजागरण के संदर्भ में नागार्जुन को केवल “प्रगतिशील कवि” कह देना पर्याप्त नहीं है। वे प्रगतिशील हैं, पर उससे अधिक वे जनता की स्मृति और तात्कालिक राजनीति के कवि हैं। वे आंदोलन की भाषा जानते हैं, पर आंदोलन की जड़ता पर भी हँसते हैं। वे करुणा के कवि हैं, पर करुणा को निष्क्रिय आँसू नहीं बनने देते। वे व्यंग्य के कवि हैं, पर व्यंग्य को निराशा या नकारवाद में नहीं बदलते। उनकी कविता का लक्ष्य जन को भयमुक्त, सजग और प्रश्नाकुल बनाना है।

१०. निष्कर्ष

आधुनिक काव्यधारा में नागार्जुन का स्थान इसलिए केंद्रीय है कि उन्होंने जनजागरण को कविता के सौंदर्यशास्त्र, भाषा और नैतिकता में रूपांतरित किया। उनके यहाँ जनता न तो करुणा की निष्क्रिय पात्र है, न इतिहास की अनाम भीड़; वह बोलती, हँसती, सहती, प्रतिरोध करती और कवि की चेतना को दिशा देती है। “प्रतिबद्ध” की नैतिक उद्घोषणा, “अकाल और उसके बाद” की भूख-संवेदना, “शासन की बंदूक” का भय-भंग, “आओ रानी” का राजनीतिक व्यंग्य, “तीनों बंदर बापू के” की नैतिक समीक्षा और “हरिजन-गाथा” की सामाजिक साक्ष्य-चेतना—ये सब मिलकर नागार्जुन को आधुनिक हिन्दी कविता में जनजागरण का असाधारण कवि सिद्ध करते हैं।

उनकी कविता आधुनिकता को नगर, मध्यवर्ग या बौद्धिक एकांत की सीमा से बाहर ले जाकर खेत, सड़क, जेल, अकाल-ग्रस्त घर और दलित-पीड़ित समुदायों के बीच रखती है। इसीलिए नागार्जुन की काव्य-सत्ता का मूल्यांकन केवल साहित्यिक इतिहास में नहीं, लोकतांत्रिक सामाजिक चेतना के इतिहास में भी होना चाहिए। वे ऐसे कवि हैं जिनकी पंक्तियाँ जनता को “विषय” नहीं, “स्वर” बनाती हैं; और यही आधुनिक जनजागरण में उनका सबसे बड़ा योगदान है।

संदर्भ-ग्रंथ

1. नागार्जुन, नागार्जुन रचना संचयन, भूमिका एवं चयन: राजेश जोशी, साहित्य अकादेमी, नई दिल्ली।
2. नागार्जुन, प्रतिनिधि कविताएँ, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
3. रामविलास शर्मा, प्रगतिशील साहित्य की समस्याएँ, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
4. नामवर सिंह, कविता के नये प्रतिमान, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
5. नन्दकिशोर नवल, आधुनिक हिन्दी कविता का इतिहास, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
6. विश्वनाथ त्रिपाठी, हिन्दी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, नई दिल्ली।



उत्तररामचरित में लोकमत लोकतन्त्र के परिप्रेक्ष्य में

अनुज कुमार मिश्रा*

संस्कृत नाट्यपरम्परा में महाकवि भवभूति विरचित उत्तररामचरित केवल करुणरसप्रधान नाटक न होकर, यह राजधर्म, लोकनियन्त्रण, प्रजाजन की अपेक्षाएँ, शासक की उत्तरदायित्व-बुद्धि तथा जनमत की शक्ति का भी गम्भीर चिन्तन है। भवभूति ने राम के माध्यम से यह प्रश्न उठाया है कि क्या आदर्श शासक को निजी जीवन और सार्वजनिक दायित्व के संघर्ष में लोकविश्वास को प्राथमिकता देनी चाहिए। इसी बिन्दु पर यह चिन्तन नाटक लोकतांत्रिक विमर्श से जुड़ जाता है। संस्कृत नाट्य-साहित्य को सामान्यतः राजाओं, नायकों और महापुरुषों के चरित्र-चित्रण का माध्यम माना जाता है, किन्तु वस्तुतः वह समाज की सामूहिक चेतना का भी सशक्त प्रतिबिम्ब है। भवभूति कृत उत्तररामचरित इस दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण नाटक है। यह नाटक केवल श्रीराम के व्यक्तिगत जीवन की करुण गाथा नहीं, अपितु लोकमत और राजसत्ता के पारस्परिक सम्बन्ध को अत्यन्त सूक्ष्म रूप में उद्घाटित करता है।

उत्तररामचरित में श्रीराम आदर्श राजा हैं, परन्तु वे निरंकुश शासक नहीं हैं। वे अपने प्रत्येक निर्णय में लोक की प्रतिक्रिया, लोक की शंका और लोक की मर्यादा को ध्यान में रखते हैं।

वे जनता के अत्यंत प्रिय हैं इसलिए भवभूति उनके लिए नरेंद्र शब्द प्रयोग करते हैं राज आसान उनके लिए धर्म आसान है-

¹ धर्मासनाद् विशति वासगृहं नरेन्द्रः

धर्मासनात् और नरेन्द्रः शब्द राम के चरित्र पर प्रकाश डालते हैं। राम दृढतापूर्वक राज-धर्म का पालन करने वाले हैं। वह सर्वप्रथम 'नरेन्द्र' हैं, पति आदि बाद में।

सीता-विसर्जन का प्रसंग इसका सर्वाधिक सशक्त उदाहरण है।

यद्यपि आधुनिक दृष्टि से सीता-परित्याग का निर्णय विवादास्पद प्रतीत हो सकता है, किन्तु उत्तररामचरित में इसका उद्देश्य राम के चरित्र में लोकनिष्ठा और राजधर्म की पराकाष्ठा को प्रदर्शित करना है। राम का आदर्श यह है कि, शासक का निजी जीवन भी सार्वजनिक विश्वास के अनुरूप होना चाहिए।

उनकी आन्तरिक वेदना को भवभूति ने अत्यन्त करुण शैली में चित्रित किया है-

²दलति हृदयं गाढोद्वेगं द्विधा तु न भिद्यते।

वहति विकलः प्राणो मोहं न मुञ्चति चेतनाम्॥

राम भीतर से टूट चुके हैं, किन्तु राजधर्म उन्हें अपने निर्णय से विचलित नहीं होने देता।

³वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि ।

लोकोत्तराणां चेतांसि को नु विज्ञातुमर्हति ॥

असाधारण महानुभावों के हृदयों की गूढ़ता, उनके स्वभाव की रहस्यात्मकता, उनके कार्यकलाप से ही उनके हृदय को 'इदमित्थम्' निश्चित कर लेना समीचीन नहीं होगा, क्योंकि उनका हृदय विरोधी गुणों एवं धर्मों का अधिष्ठान होता है। सीता-परित्याग को देखकर श्रीराम के हृदय को कठोर घोषित कर देना भ्रान्ति से खाली

* शोधच्छात्र, साहित्य विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

दूरभाष: 8827946816, E-mail anujmishra20155@gmail.com

¹ उत्तररामचरितम्, १ /७

² उत्तररामचरितम्

³ उत्तररामचरितम्, २ /७

नहीं होगा, क्योंकि उनका सीता की प्रतिकृति से ही यज्ञ सम्पन्न करना उनके हृदय की स्नेहजन्य लोकोत्तर मृदुता को भी प्रकट करता है। भाव-समानता के लिए द्रष्टव्य -

“सम्पत्सु महतां चित्तं भवत्युत्पलकोमलम् ।

आपत्सु च महाशैलशिलासङ्घातकर्कशम् ॥”

भवभूति स्पष्ट संकेत देते हैं कि इस निर्णय का भार केवल राजा पर नहीं है, बल्कि लोकमत भी उसका कारण है

“न दोषः केवलं राज्ञः, लोकोऽप्यत्र निमित्तभूतः।”

इस श्लोक का भाव यह है कि राजकीय निर्णयों में केवल राजा को दोषी नहीं ठहराया जा सकता; समाज और लोकवाणी भी उसमें सहभागी होती है। यह विचार आधुनिक लोकतन्त्र की धारणा से अत्यन्त साम्य रखता है।

लोकतन्त्र का शाब्दिक अर्थ है— “लोकस्य तन्त्रं लोकतन्त्रम्”, अर्थात् जनता द्वारा संचालित शासन। आधुनिक लोकतन्त्र में जनता सर्वोच्च सत्ता की धारक होती है। शासन की वैधता जनस्वीकृति पर आधारित होती है तथा शासक जनता के प्रति उत्तरदायी होता है। लोकतन्त्र के प्रमुख तत्त्वों में जनमत, उत्तरदायित्व, समानता, न्याय तथा जनकल्याण सम्मिलित हैं।

भारतीय परम्परा में भी लोकमत को महत्त्व दिया गया है। महाभारत में कहा गया है—
“लोकरञ्जनमेवात्र राज्ञां धर्मः सनातनः।

अर्थात् प्रजा को प्रसन्न रखना ही राजा का सनातन धर्म है।

आज के लोकतांत्रिक समाज में जनमत चुनाव, मीडिया और सार्वजनिक विमर्श के माध्यम से व्यक्त होता है। उत्तररामचरित में यही भूमिका लोकापवाद निभाता है। भवभूति लोकापवाद को केवल नकारात्मक या विध्वंसक शक्ति के रूप में नहीं दिखाते, बल्कि उसे सामाजिक नैतिक चेतना का प्रतीक बनाते हैं।

राम को भय है कि यदि लोक में उनकी कीर्ति मलिन हुई, तो राजधर्म का आधार ही नष्ट हो जाएगा—
इसी भाव की एक सूक्ति अन्यत्र दृष्टिगोचर होती है।

“लोकः खलु सतां मान्यः, लोकात् धर्मः प्रवर्तते।”

अर्थात् धर्म की प्रतिष्ठा लोकस्वीकृति से ही सम्भव है। यह धारणा लोकतन्त्र की आत्मा है।

मौन भी लोकमत है

उत्तररामचरित की एक अत्यन्त आधुनिक विशेषता यह है कि यहाँ लोकमत केवल शब्दों में नहीं, बल्कि मौन में भी प्रकट होता है। अयोध्या के नागरिक न तो विद्रोह करते हैं, न खुलकर विरोध प्रकट करते हैं, फिर भी उनका मौन राम के हृदय पर गहरा दबाव डालता है।

“देव्यामपि हि वैदेह्यां सापवादो यतो जनः । रक्षोगृहस्थितिर्मूलमग्निशुद्धौ त्वनिश्चयः

भवभूति का कौशल यह है, कि वे लोकमत को केवल संवादों में नहीं, बल्कि वातावरण, करुणा और मानसिक द्वन्द्व के माध्यम से भी व्यक्त करते हैं।

राजा और लोक का सम्बन्ध

⁴ भर्तृहरि, नीतिशतक ६६

⁵ उत्तररामचरितम्, द्वितीय अङ्क⁵

⁶ महाभारत

⁷ उत्तररामचरित १/६

उत्तररामचरित का राम अधिनायक नहीं, बल्कि लोक के प्रति उत्तरदायी शासक है। वह अपने व्यक्तिगत सुख का त्याग करता है, क्योंकि—

⁸“प्रजासुखे सुखं राज्ञः, प्रजानां च हिते हितम्।”

प्रजा के सुखी होने पर ही राजा का सुख और हित निश्चित होता है ।

⁹हा हा धिक् ! परगृहबासदूषणं यद्वैदेह्याः प्रशमितमद्भूतैरुपायैः । एतत्तत्पुनरपि दैवदुविपाकादालकं विषमिव सर्वतः प्रसक्तम्॥

हाय ! हाय !! धिक्कार है! सीता का जो परगृह-निवासरूप दोष (अग्निशुद्धिरूप) विचित्र उपायों से शान्त किया गया था, भाग्य के दुष्परिणाम से वही पागल कुते के विष के समान चारों ओर फैल गया है॥

राम का मानना है कि किसी भी उपाय से प्रजा का मनोरंजन करना ही सज्जनों का व्रत है इक्ष्वाकुवंशीय राजा इसका पालन करते आए हैं इसी व्रत का पालन करते हुए राजा दशरथ ने अपने पुत्र राम को और प्रजा को छोड़ते हुए किया था।

¹⁰सतां केनापि कार्येण लोकस्याराधनं व्रतम् ।

यत्पूरितं हि तातेन मां च प्राणांश्च मुञ्चता ॥

राम मत में प्रजा कभी दोषी नहीं हो सकती दुर्मुख द्वारा प्रजा को दुर्जन शब्द अभिहित किया जाने पर राम तत्काल इसका निषेध करते हैं, और यह मानते हैं कि किसी भी स्थिति में प्रजा का दोष नहीं है यदि प्रजा के मन में कुछ भाव है जो राम के अनुकूल नहीं तो यह राम के भाग्य का दोष है, साथ ही राम सीता के विषय में प्रजा के दोष रोपण को प्रमाण के अभाव में उपजा मानते हैं----

¹¹इक्ष्वाकुवंशोऽभिमतः प्रजानां जातं च दैवादवचनीयबीजम् ।

यच्चाद्भुतं कर्म विशुद्धिकाले प्रत्येतु कस्तद्यदि दूरवृत्तम् ॥

गुरुजन भी प्रजा के अनुरंजन से प्राप्त होने वाले यश को राजा का सर्वोच्च कृष्णा धन मानते हैं इसलिए राजा को हार्निश प्रजा की भलाई में लगे रहना चाहिए

¹²युक्तः प्रजानामनुरञ्जने स्या-स्तस्माद्यशो यत् परमं धनं वः ॥

एक उत्कृष्ट राजा के तौर पर राम की शपथ है कि लोक की भलाई के लिए राम सब कुछ त्याग कर सकते हैं....

¹³स्नेहं दयां च सौख्यं च यदि वा जानकीमपि ।

आराधनाय लोकानां मुञ्चतो नास्ति मे व्यथा ॥

राम अपनी प्रजा के पालक के रूप में सुप्रसिद्ध हैं व्यंग में ही सही किंतु राम की माता कौशल्या को जनक प्रजा पालक की माता कहकर संबोधित करते हैं आशय यह है कि राम ने पत्नी पालन की अपेक्षा प्रजापालन को अधिक महत्व दिया

¹⁴जनकः- ! अप्यनामयमस्याः प्रजापालकस्य मातुः।

⁸ अर्थशास्त्र

⁹ उत्तररामचरितम् १/४०

¹⁰ उत्तररामचरितम् १/४१

¹¹ उत्तररामचरितम् १/४४

¹² उत्तररामचरितम् १/११

¹³ उत्तररामचरितम् १/१२

¹⁴ उत्तररामचरितम् २४८ पेज

एक लोकतंत्र में सर्वोत्कृष्ट अधिकार प्रजा का होता है उसका मत सर्वमान्य है लोकमत के सामने राजा का मत या अन्य किसी का मत मायने नहीं रखता हैं, चतुर्थ अंक में जनक जी के आक्षेप का उत्तर देते हुए कांचुकी की कहता है की जनता को सीता की अग्निशुद्धि विश्वास नहीं था इसीलिए राजा राम को अपनी प्राणप्रिया पत्नी सीता को भी त्यागना पड़ा...

**रामभद्रस्यापि दैवदुर्योगः कोऽपि यत्किल समन्ततः प्रवृत्तबीभत्सकिंवदन्तीकाः पौरजानपदा नाग्निशुद्धिमनल्पकाः
प्रतियन्तीति दारुणमनुष्ठितं देवेन ।**

रामभद्र का भी निश्चय ही कोई भाग्य का बुरा संयोग था कि, पुरवासियों और जनपदवासियों के द्वारा घृणित किंवदन्ती फैल गयी और उन तुच्छ हृदय वालों को अग्निशुद्धि पर भी विश्वास नहीं है, इसी कारण महाराज के द्वारा (ऐसा) भीषण कर्म किया गया



संस्कृतसाहित्ये जगन्नाथसंस्कृतेः अध्ययनम्

राजलक्ष्मी वेहेरा*

शोधसारः-

भारतीयसंस्कृतिः धर्मस्य, आध्यात्मिकतायाः, भक्तेः, समन्वयस्य मानवतायाश्च आधारभूता अस्ति । अस्याः संस्कृतेः महान् प्रतीकः श्रीजगन्नाथसंस्कृतिः अस्ति । ओडिशाराज्यस्य पुरीधाम्नि विराजमानः श्रीजगन्नाथः केवलं धार्मिकदेवता न, अपितु भारतीयसमन्वयभावनायाः जीवन्तप्रतिमूर्तिः अस्ति । संस्कृतसाहित्ये स्कन्दपुराणे, ब्रह्मपुराणे, नीलाद्रिमहोदये, कपिलसंहितायां, जगन्नाथाष्टके, गीतगोविन्दे च श्रीजगन्नाथस्य महिमा विस्तरेण वर्णिता अस्ति ।

अस्मिन् शोधप्रबन्धे जगन्नाथसंस्कृतेः ऐतिहासिकम्, धार्मिकम्, दार्शनिकम्, सामाजिकम्, सांस्कृतिकं च स्वरूपम् आलोचितम् अस्ति । दारुब्रह्मतत्त्वम्, नवकलेवरपरम्परा, रथयात्रा, महाप्रसादव्यवस्था, विश्वबन्धुत्वभावना, नारीसम्मानः, धर्मसमन्वयः इत्यादीनां विषयाणां विस्तृतम् अध्ययनं कृतम् अस्ति । विशेषतया संस्कृतसाहित्ये जगन्नाथसंस्कृतेः योगदानं, भक्तिचेतना, लोकमङ्गलभावना च निरूपिता अस्ति ।

अध्ययनेन ज्ञायते यत् जगन्नाथसंस्कृतिः केवलम् ओडिशायाः न, अपितु सम्पूर्णभारतीयसंस्कृतेः गौरवम् अस्ति । एषा संस्कृतिः “वसुधैव कुटुम्बकम्” इति भावनां प्रतिपादयति मानवसमाजस्य एकतां, समानतां, सहिष्णुतां च संवर्धयति । अतः संस्कृतसाहित्ये जगन्नाथसंस्कृतेः अध्ययनम् भारतीयसंस्कृतेः विश्वमानवतायाश्च बोधाय अत्यन्तम् आवश्यकम् अस्ति ।

मुख्यशब्दाः-जगन्नाथसंस्कृतिः, संस्कृतसाहित्यम्, पुरुषोत्तमक्षेत्रम्, नीलाचलः, दारुब्रह्मः, नवकलेवरम्, रथयात्रा, महाप्रसादः, विश्वबन्धुत्वम्, भक्तिः, समन्वयः, मानवता, गीतगोविन्दम्, जगन्नाथाष्टकम्, स्कन्दपुराणम् ।

अध्ययनम् -

भारतीयसंस्कृतिः धर्मस्य, आध्यात्मिकतायाः, भक्तेः, साहित्यस्य, समन्वयस्य मानवतायाश्च अखण्डा परम्परा अस्ति । अस्याः परम्परायाः महान् प्रतीकः ओडिशाराज्यस्य पुरीधाम्नि विराजमानः प्रभुः श्रीजगन्नाथः । जगन्नाथसंस्कृतिः केवलं धार्मिकपरम्परा नास्ति, अपितु सा समानता-समरसता-सर्वधर्मसमन्वय-नारीसम्मान-लोकसंस्कृति-विश्वबन्धुत्वानां जीवन्तदर्शनम् अस्ति । संस्कृतसाहित्ये स्कन्दपुराणे, ब्रह्मपुराणे, नीलाद्रिमहोदये, कपिलसंहितायां, जगन्नाथाष्टके, गीतगोविन्दे च जगन्नाथस्य महिमा विस्तरेण वर्णिता अस्ति ।

भारतीयसंस्कृतेः इतिहासे पुरीधाम्नः स्थानम् अत्युच्चम् अस्ति । “श्रीक्षेत्रम्”, “नीलाचलः”, “पुरुषोत्तमक्षेत्रम्” इति नामभिः प्रसिद्धम् एतत् पवित्रधाम चतुर्धामेषु अन्यतमम् अस्ति । पुरी केवलं तीर्थक्षेत्रं नास्ति, अपितु भारतीयाध्यात्मिकतायाः सजीवकेन्द्रम् अस्ति ।

संस्कृतसाहित्ये जगन्नाथः विष्णुरूपेण, कृष्णरूपेण, पुरुषोत्तमरूपेण, बुद्धरूपेण, परब्रह्मरूपेण च निरूपितः अस्ति । तस्य संस्कृतिर्भक्तेः मानवतायाश्च अद्भुतः समन्वयः अस्ति ।

नीलाद्रौ शङ्खमध्यस्थे शतकोटिनिवासिनि ।

तत्र देवो जगन्नाथः सर्वलोकनमस्कृतः॥

अर्थः - शङ्खाकारस्य नीलाचलस्य मध्ये विराजमानः जगन्नाथः सर्वैर्लोकैः पूज्यते । जगन्नाथसंस्कृतेः प्रमुखविशेषता तस्याः सार्वभौमिकता अस्ति । अत्र जाति-वर्ण-धर्म-भाषाभेदस्य संकीर्णता नास्ति । सर्वे प्रभोः समीपे समाना एव ।

जगन्नाथसंस्कृतेः ऐतिहासिकोद्भवः

इतिहासविदां मते जगन्नाथसंस्कृतेः मूलं शबरजनजातीयपरम्परासु निहितम् अस्ति । “नीलमाधव” उपासनायाः एव अस्याः प्रारम्भः अभवत् । पश्चात् वैदिक-बौद्ध-जैन-वैष्णवपरम्पराणां समन्वयेन एषा महान् सांस्कृतिकप्रवाहः अभवत् ।

स्कन्दपुराणे राजा इन्द्रद्युम्नस्य कथा विस्तरेण वर्णिता अस्ति । नीलमाधवस्य दर्शनार्थं सः विद्यापतिं प्रेषितवान् । अनन्तरं दारुब्रह्मणः श्रीजगन्नाथ-बलभद्र-सुभद्राणां विग्रहाः निर्मिताः ।

ॐ यं दारुब्रह्ममूर्तिं प्रणवतनुधरं सर्ववेदान्तसारम् ।

भक्तानां कल्पवृक्षं भवजलतरणीं सर्वतत्त्वानुतत्त्वम् ॥

* Lecturer in Maharishi college of Natural Law, Saheed Nagar, Bhubaneswar
E-mail ID: beherarajalaxmi246@gmail.com

योगीनां हंसतत्त्वं हरिहरनमितं श्रीपतिं वैष्णवानाम् ।
 शैवानां भैरवाश्च पशुपतिं परमशक्तिरं च शाक्तम् ॥
 बौद्धानां बुद्धसाक्षात् ऋषभयतिवरं जैनसिद्धान्तसारम् ।
 तं देवः पातु नित्यं कलिकलुषहरं श्रीनीलशैलाधिनाथम् ॥¹

दारुब्रह्मतत्त्वं नवकलेवरं च जगन्नाथसंस्कृतेः सर्वाधिकम् अद्वितीयं तत्त्वं “दारुब्रह्मतत्त्वम्” अस्ति । एतत् भारतीयदर्शने अनुपमम् । ‘नव’ इत्यस्य अर्थः नवीनः तथा ‘कलेवर’ इत्यस्य अर्थः शरीरम् । अतः नवकलेवरम् इति श्रीजगन्नाथस्य नवीनशरीरधारणोत्सवः । सामान्यतः यस्मिन् वर्षे अधिकाषाढमासः भवति, तस्मिन् वर्षे नवकलेवरोत्सवः आयोजितः भवति ।

नवकलेवरस्य अवसरे वनयागयात्रया पवित्रदारुसङ्ग्रहः क्रियते तथा च नवीनविग्रहाणां निर्माणं विधीयते । चतुर्दश्यां रात्रौ पुरातनविग्रहेभ्यः ब्रह्मपदार्थस्य नवीनविग्रहेषु स्थापना क्रियते । अस्याः गुह्यनीतेः दायित्वं पतिमहापात्रस्य उपरि भवति ।

ब्रह्मपदार्थस्य स्थानान्तरणानन्तरं पुरातनविग्रहाः कोइलिवैकुण्ठे समाधीयन्ते । नवकलेवरः जीवस्य पुरातनशरीरत्यागं कृत्वा नवीनशरीरधारणस्य आध्यात्मिकतत्त्वं प्रकाशयति ।

एतत् मानवजीवनस्य जन्म-मृत्युतत्त्वं प्रतिपादयति ।

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय
 नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि ।
 तथा शरीराणि विहाय जीर्णा-
 न्यन्यानि संयाति नवानि देही ॥²

यथा- मनुष्यः यथा जीर्णवस्त्राणि त्यक्त्वा नवानि वस्त्राणि धारयति, तथा आत्मा जीर्णदेहं त्यक्त्वा नूतनदेहं गृह्णाति ।

नवकलेवरः केवलं धार्मिकाचारः न, अपितु जीवनमृत्योः गम्भीरदर्शनम् ।

संस्कृतसाहित्ये जगन्नाथः

स्कन्दपुराणम्

“वेदार्थं पूरयति प्रकाशयतीति पुराणम्” इति महाजनाः वदन्ति । अर्थात् वेदानां गूढार्थं सरलतया जनसामान्याय प्रकाशयति इति कारणेन “पुराणम्” इति नाम ।

अष्टादशपुराणेषु स्कन्दपुराणम् अन्यतमम् अस्ति । अस्य विष्णुखण्डान्तर्गत उत्कलखण्डे श्रीपुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्यं वर्णितम् अस्ति ।

स्कन्देन कथितं पूर्वं श्रुत्वा शम्भोर्मुखाम्बुजात् ।
 समक्षं सिद्धदेवौघसभायां मन्दरान्तरे ॥

महाराजः इन्द्रद्युम्नः देवर्षेः नारदस्य समीपात् भक्तितत्त्वं श्रुत्वा नीलाचलं प्रति प्रस्थितवान् । तत्र अश्वमेधयज्ञं कृतवान् । भक्तानां कल्याणार्थं परब्रह्म परमात्मा दारुब्रह्मरूपेण श्रीबलभद्र-सुभद्रा-जगन्नाथ-सुदर्शनरूपेण प्रादुरभवत् ।

व्रतेषु तीर्थेषु च यज्ञदानयोः पुण्यं यदुक्तं विमलात्मनाम् ।

अहर्निवासाल्लभते तु सर्वं निमेषवासात् खलु चाश्वमेधिकम् ॥

पुरुषोत्तमाख्यं क्षेत्रं सर्वमोक्षप्रदायकम् ॥³

यथा - पुरुषोत्तमक्षेत्रं सर्वेषां मोक्षप्रदायकम् अस्ति ।

नीलाचलनिवासाय नित्याय परमात्मने ।

बलभद्रसुभद्राभ्यां जगन्नाथाय ते नमः ॥

यथा - नीलाचले विराजमानाय परमात्मने बलभद्र-सुभद्रासहिताय जगन्नाथाय नमः ।

ब्रह्मपुराणम्

ब्रह्मपुराणे पुरीक्षेत्रं मोक्षक्षेत्ररूपेण वर्णितम् ।

पुरुषोत्तमक्षेत्रे मरणं मुक्तिदायकम् ॥

¹ श्रीजगन्नाथः, पृ- २५

² श्रीभगवद्गीता 2.22

³ श्रीपुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्यम्, पृ - २, ३

यथा - पुरुषोत्तमक्षेत्रे मरणं मोक्षदायकम् ।

नीलाद्रिमहोदयः

नीलाद्रिमहोदयः जगन्नाथसंस्कृतेः प्रमुखग्रन्थः अस्ति । अस्मिन् रथयात्रा-मन्दिरनीति-सेवापद्धति-महाप्रसादपरम्पराणां विस्तृतवर्णनं दृश्यते ।

जगन्नाथः स्वयं ब्रह्म सर्वलोकैकनायकः॥

यथा - जगन्नाथः स्वयं ब्रह्म तथा सर्वलोकानां नायकः अस्ति ।

जगन्नाथाष्टकं भक्तिचेतना च

आदिशङ्कराचार्यविरचितं जगन्नाथाष्टकं भक्तिसाहित्यस्य अमूल्यरत्नम् ।

कदाचित्कालिन्दीतटविपिनसंगीतकरवो

मुदा गोपीनारीवदनकमलास्वादमधुपः॥⁴

यथा - यमुनातटे गोपीभिः सह लीलारतः कृष्णरूपः जगन्नाथः भक्तानाम् आनन्ददायकः अस्ति ।

भुजे सव्ये वेणुं शिरसि शिखिपिच्छं कटितटे

दुकूलं नेत्रान्ते सहचरकटाक्षं विदधते ॥⁵

यथा - वामभुजे वेणुं धारयन्, शिरसि मयूरपिच्छं बिभ्रत् प्रभुः भक्तान् कृपया पश्यति ।

गीतगोविन्दं जगन्नाथश्च

महाकवेः जयदेवस्य गीतगोविन्दं जगन्नाथभक्तेः सङ्गीतमयी आत्मा अस्ति ।

स्मरगरलखण्डनं मम शिरसि मण्डनं

देहि पदपल्लवमुदारम् ॥

यथा - हे प्रभो ! तव चरणपल्लवः मम जीवनस्य श्रेष्ठभूषणं भवतु ।

प्रलयपयोधिजले धृतवानसि वेदम् ॥⁶

यथा - प्रलयकाले वेदान् रक्षितवन्तं प्रभुं प्रति नमः ।

रथयात्रा - विश्वबन्धुत्वस्य महोत्सवः

श्रीजगन्नाथस्य विविधेषु पर्वसु मध्ये गुण्डिचायात्रा सर्वश्रेष्ठा यात्रा अस्ति । पण्डितानां मते इन्द्रद्युम्नस्य राज्ञ्याः गुण्डिचा इत्यस्याः नाम्नः अनुसारेण अस्याः यात्रायाः नाम “गुण्डिचायात्रा” अभवत् । केचन एनां “नवदिनयात्रा”, “घोषयात्रा” अथवा “रथयात्रा” इति अपि वदन्ति ।

आषाढमासस्य शुक्लद्वितीयायां तिथौ एषा रथयात्रा भवति । अस्याः यात्रायाः दर्शनार्थं देशविदेशेभ्यः लक्षशः भक्तजनाः पुरीक्षेत्रस्य बडदाण्डे समागच्छन्ति । भक्तानां विश्वासः अस्ति यत्-

“रथे तु वामनं दृष्ट्वा पुनर्जन्म न विद्यते ।”

श्रीजगन्नाथः कोटिब्रह्माण्डानां नाथः अस्ति । अतः सः जाति-धर्म-वर्णभेदं विहाय दीनदुःखितजनानाम् उद्धारार्थं अस्मिन् दिने रथमारुह्य जनसमूहमध्ये आगच्छति ।

महालक्ष्म्याः रोषः नारीसम्मानश्च

रथयात्राकाले प्रभुः जगन्नाथः गुण्डिचामन्दिरं गच्छति । महालक्ष्मीं विना गमनात् सा क्रुद्धा भवति । “हेरा-पञ्चमी” लीलायां तस्याः वर्णनं दृश्यते ।

अस्याः लीलायाः सामाजिकः संदेशः अस्ति -

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः॥⁷

भक्तः सालबेगः - धर्मसमन्वयस्य उदाहरणम्

⁴ जगन्नाथाष्टकम् -1

⁵ गीतगोविन्दम्-भूमिका

⁶ गीतगोविन्दम्-भूमिका

⁷ मनुस्मृतिः, पृ - ५६

जगन्नाथसंस्कृतेः सर्वाधिकं प्रेरणादायकं उदाहरणं भक्तः सालबेगः अस्ति । सः मुस्लिमपितुः तथा हिन्दूमातुः पुत्रः आसीत् । जन्मना मुस्लिमः सन् अपि तस्य हृदये श्रीजगन्नाथस्य प्रति अनन्या भक्तिः आसीत् । सः ओडियाभाषायां बहूनि भक्तिगीतानि रचितवान्, येषां माधुर्यं भक्तिभावश्च अद्यापि जनमानसेषु जीवति ।

लोकप्रसिद्धकथानुसारं एकदा रथयात्राकाले सालबेगः पुरीं प्रति आगच्छन् आसीत् । तस्य विलम्बं दृष्ट्वा श्रीजगन्नाथस्य रथः मार्गमध्ये स्थगितः अभवत् । यदा सालबेगः आगत्य भक्तिभावेन प्रणामम् अकरोत्, तदा एव रथः पुनः गतिम् अलभत । एषा कथा दर्शयति यत् भगवतः समीपे जाति-धर्म-वर्णभेदानां किञ्चिदपि स्थानं नास्ति ।

भक्तिर्न जातिं पृच्छति न कुलं न धनं तथा ।

हृदयस्य विशुद्धत्वं पश्यति केवलं हरिः॥

यथा - भगवान् केवलं भक्तस्य निर्मलं हृदयमेव पश्यति, न तु जाति-कुल-धर्मादीन् । अतः सालबेगः जगन्नाथसंस्कृतेः धर्मसमन्वयस्य, मानवतायाः, विश्वबन्धुत्वस्य च उज्ज्वलप्रतीकः अस्ति ।

स्वर्गद्वारम्

पुरीधाम्नः समुद्रतीरे स्थितं स्वर्गद्वारं हिन्दुधर्मे महत्त्वपूर्णं मोक्षतीर्थम् अस्ति । प्राचीनग्रन्थेषु विश्वासः अस्ति यत् श्रीजगन्नाथस्य कृपया अत्र अन्त्येष्टिसंस्कारः कृतः चेत् जीवः मोक्षमार्गं प्राप्नोति ।

अस्य स्थाने प्रतिदिनं सहस्रशः श्रद्धालवः आगत्य पितृणां तर्पणं, श्राद्धकर्माणि, अन्त्येष्टिसंस्कारांश्च कुर्वन्ति । समुद्रस्य रमणीयः दृश्यः, धार्मिकवातावरणं, जगन्नाथस्य निकटता च अस्य स्थानस्य आध्यात्मिकमहत्त्वं वर्धयन्ति ।

पुरुषोत्तमक्षेत्रे मरणं मुक्तिदायकम् ॥

मोक्षप्रदः इति श्रद्धा प्राचीनकालात् प्रचलिता अस्ति । स्वर्गद्वारं केवलं श्मशानभूमिः न, अपितु जीवनस्य अनित्यता, आत्मनः अमरत्वं, मोक्षतत्त्वं च स्मारयति । एतत् स्थानं जगन्नाथसंस्कृतेः आध्यात्मिकदर्शनस्य महत्त्वपूर्णं प्रतीकम् अस्ति ।

महाप्रसादः - समानतायाः प्रतीकः

श्रीमन्दिरे देवतानां समर्पितं भोगं महाप्रसादः इति कथ्यते । महाप्रसादः श्रीक्षेत्रस्य प्रमुखवैशिष्ट्यमस्ति । सः श्रीजगन्नाथाय निवेद्य विमलादेव्यै समर्पितः सन् एव महाप्रसादत्वं प्राप्नोति । महाप्रसादे कापि निषेधा नास्ति ।

यः श्रद्धालुः हृदये श्रीजगन्नाथस्य मूर्तिं स्मरन् मुखेन च तस्य नाम उच्चारयन् महाप्रसादं सेवते, सः पातकात् अतिपातकात् महापातकाच्च विमुक्तिं प्राप्नोति । चान्द्रायणव्रतस्य, यज्ञकर्मणः, जपहोमस्य, कोटिब्राह्मणभोजनस्य च यत् पुण्यफलं भवति, तत्फलं महाप्रसादसेवनेनापि लभ्यते । महाप्रसादः दिव्यज्ञानस्य ब्रह्मज्ञानस्य च प्रतीकः अस्ति । अयं “अन्नब्रह्म” इति नाम्नापि प्रसिद्धः अस्ति ।

जगन्नाथसंस्कृतिः विश्वमानवतावादश्च

जगन्नाथसंस्कृतिः “वसुधैव कुटुम्बकम्” इति भावनां प्रतिपादयति ।

अयं निजः परो वेति गणना लघुचेतसाम् ।

उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम् ॥⁸

यथा - “अयं मम, सः परः” इति भेदभावना लघुचेतसां लक्षणम् । उदारचरितानां कृते समग्रः विश्वः एव कुटुम्बम् । अद्य लण्डन-न्यूयॉर्क-मास्को-सिड्नी इत्यादिषु नगरेषु अपि रथयात्रा आयोज्यते ।

उपसंहारः

संस्कृतसाहित्ये जगन्नाथसंस्कृतेः स्थानम् अत्यन्तम् उन्नतम् अस्ति । एषा केवलं धार्मिकपरम्परा न, अपितु मानवता-समन्वय-नारीसम्मान-समानता-विश्वबन्धुत्वानां जीवन्तदर्शनम् । स्कन्दपुराणम्, ब्रह्मपुराणम्, नीलाद्रिमहोदयः, कपिलसंहिता, जगन्नाथाष्टकम्, गीतगोविन्दम् इत्यादयः ग्रन्थाः जगन्नाथचेतनाम् अमरां कृतवन्तः ।

जगन्नाथसंस्कृतिः अस्मान् शिक्षयति -

भक्तौ कश्चन भेदः नास्ति ।

मानवता एव सर्वोच्चः धर्मः ।

नारीसम्मानः समाजस्य आधारः ।

सर्वे प्रभोः सन्तानाः ।

अतः जगन्नाथसंस्कृतेः अध्ययनं भारतीयसंस्कृतेः विश्वमानवतायाश्च अध्ययनार्थम् अत्यावश्यकम् अस्ति ।

⁸ हितोपदेशः, पृ -134

संदर्भग्रन्थसूची -

१. स्कन्दपुराणम्, उत्कलखण्डः, गीताप्रेस्, गोरखपुरम् ।
२. ब्रह्मपुराणम्, गीताप्रेस्, गोरखपुरम् ।
३. नीलाद्रिमहोदयः, सम्पादकः, पण्डितः सूर्यनारायणदासः, पुरी ।
४. कपिलसंहिता, सम्पादकः, पण्डितः हरिहरमहापात्रः, कटकम् ।
५. आदिशङ्कराचार्यः, जगन्नाथाष्टकम्, चौखम्बा संस्कृत सीरीज्, वाराणसी ।
६. जयदेवः, गीतगोविन्दम्, चौखम्बा विद्याभवनम्, वाराणसी ।
७. श्रीमद्भगवद्गीता, गीताप्रेस्, गोरखपुरम् ।
८. पण्डितः सूर्यनारायणदासः, श्रीजगन्नाथसंस्कृतिः, पुरी ।
९. केदारनाथमहापात्रः । श्रीजगन्नाथतत्त्वम् । कटकम् ।
१०. डॉ. हरेकृष्णशतपथी । ओडिशायाः सांस्कृतिकः इतिहासः । भुवनेश्वरम् ।
११. Odisha Review (ओडिशा रिव्यू), जगन्नाथसंस्कृतिविशेषाङ्कः, सूचना-लोकसम्पर्कविभागः, ओडिशासर्वकारः ।
१२. Journal of Odishan Studies, उत्कलविश्वविद्यालयः, भुवनेश्वरम् ।
१३. पुरुषोत्तम-गवेषणापत्रिका, श्रीजगन्नाथसंस्कृतविश्वविद्यालयः, पुरी ।
१४. वावा चैतन्यचरणदासः, श्रीपुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्यम्, श्रीजगन्नाथधामः, पुरी ।
१५. प्रमोदकुमार पाढी, हितोपदेशः, किताबमहलः, कटकः ।
१६. श्रीजगन्नाथः, वैकुण्ठनाथमहापात्रः, विवेकानन्दमार्गः, वालेश्वरः ।



खिलाड़ियों के आत्मविश्वास पर नियमित योगाभ्यास एवं प्राणायाम के प्रभाव का अध्ययन

अभिषेक कुमार सिंह*
डॉ. ओमदेव सिंह गौतम**

सारांश

वर्तमान समय में खेलों का स्तर अत्यधिक प्रतिस्पर्धात्मक हो गया है। किसी भी खिलाड़ी की सफलता केवल उसकी शारीरिक क्षमता पर निर्भर नहीं करती, बल्कि उसकी मानसिक शक्ति, आत्मविश्वास, एकाग्रता एवं भावनात्मक नियंत्रण भी उतने ही महत्वपूर्ण होते हैं। आत्मविश्वास (Self-Confidence) एक ऐसी मनोवैज्ञानिक विशेषता है, जो खिलाड़ी को कठिन परिस्थितियों में भी धैर्य, साहस एवं सकारात्मक सोच के साथ उत्कृष्ट प्रदर्शन करने के लिए प्रेरित करती है। जिन खिलाड़ियों का आत्मविश्वास उच्च होता है, वे प्रतियोगिताओं के दबाव को बेहतर ढंग से नियंत्रित कर पाते हैं तथा असफलताओं से शीघ्र उबरकर पुनः सफलता प्राप्त करने का प्रयास करते हैं।

योगाभ्यास एवं प्राणायाम भारतीय संस्कृति की अमूल्य धरोहर हैं, जिन्हें आधुनिक विज्ञान ने भी मानसिक एवं शारीरिक स्वास्थ्य के लिए अत्यंत प्रभावी माना है। नियमित योगाभ्यास से शरीर की लचक, संतुलन एवं कार्यक्षमता में वृद्धि होती है, जबकि प्राणायाम के माध्यम से श्वसन प्रणाली एवं तंत्रिका तंत्र संतुलित होते हैं। इसके परिणामस्वरूप तनाव, चिंता एवं मानसिक अस्थिरता में कमी आती है तथा आत्मविश्वास, आत्म-नियंत्रण एवं सकारात्मक दृष्टिकोण का विकास होता है।

प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य खिलाड़ियों के आत्मविश्वास पर नियमित योगाभ्यास एवं प्राणायाम के प्रभाव का विश्लेषण करना है। अध्ययन में विश्वविद्यालय स्तर के खिलाड़ियों को आधार बनाकर योगाभ्यास करने वाले एवं योगाभ्यास न करने वाले खिलाड़ियों के आत्मविश्वास की तुलना की जाएगी। अध्ययन में वर्णनात्मक एवं सर्वेक्षण पद्धति का उपयोग किया जाएगा तथा प्राप्त आँकड़ों का सांख्यिकीय विश्लेषण किया जाएगा।

अध्ययन के निष्कर्ष खिलाड़ियों, प्रशिक्षकों, खेल मनोवैज्ञानिकों एवं शारीरिक शिक्षा के शिक्षकों के लिए उपयोगी सिद्ध होंगे। साथ ही यह शोध खेल प्रशिक्षण कार्यक्रमों में योग एवं प्राणायाम को सम्मिलित करने की आवश्यकता को भी रेखांकित करेगा।

शब्द कुंजी : योगाभ्यास, प्राणायाम, आत्मविश्वास, खिलाड़ी, खेल मनोविज्ञान, मानसिक स्वास्थ्य, तनाव नियंत्रण, भावनात्मक संतुलन, सकारात्मक सोच, विश्वविद्यालय स्तर के खिलाड़ी

प्रस्तावना

मानव जीवन में आत्मविश्वास सफलता का आधार माना जाता है। खेल के क्षेत्र में इसका महत्व और भी अधिक बढ़ जाता है क्योंकि प्रतियोगिता के दौरान खिलाड़ी को शारीरिक दक्षता के साथ-साथ मानसिक दृढ़ता का भी प्रदर्शन करना पड़ता है। आत्मविश्वास वह मानसिक शक्ति है, जो खिलाड़ी को अपनी क्षमताओं पर विश्वास रखने, कठिन परिस्थितियों का सामना करने तथा लक्ष्य प्राप्ति के लिए निरंतर प्रयास करने हेतु प्रेरित करती है। यदि किसी खिलाड़ी में आत्मविश्वास की कमी होती है, तो उसकी तकनीकी दक्षता होने के बावजूद उसका प्रदर्शन प्रभावित हो सकता है।

आधुनिक खेल मनोविज्ञान के अनुसार आत्मविश्वास खिलाड़ियों की प्रेरणा, निर्णय क्षमता, जोखिम उठाने की क्षमता, भावनात्मक नियंत्रण तथा प्रतियोगिता के दौरान प्रदर्शन को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करता है। प्रतियोगिता से पूर्व अत्यधिक तनाव, असफलता का भय, दर्शकों का दबाव तथा चयन की चिंता

* शोधकर्ता, एसो. प्रो. (शोध निर्देशक), शारीरिक शिक्षा एवं खेलकूद विभाग, स्नातकोत्तर महाविद्यालय, गाजीपुर, सम्बद्ध-वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालय, जौनपुर, उ.प्र.

** एसो. प्रो. (शोध निर्देशक), शारीरिक शिक्षा एवं खेलकूद विभाग, स्नातकोत्तर महाविद्यालय, गाजीपुर, सम्बद्ध-वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालय, जौनपुर, उ.प्र.

खिलाड़ियों के आत्मविश्वास को कम कर सकते हैं। ऐसी परिस्थितियों में योगाभ्यास एवं प्राणायाम मानसिक संतुलन बनाए रखने के प्रभावी साधन सिद्ध होते हैं।

योग का इतिहास भारत की प्राचीन वैदिक परंपरा से जुड़ा हुआ है। महर्षि पतंजलि ने योग को श्चित्तवृत्ति निरोधश्च अर्थात् मन की चंचलता को नियंत्रित करने का माध्यम बताया है। योगासन शरीर को स्वस्थ एवं संतुलित बनाते हैं, जबकि प्राणायाम श्वास को नियंत्रित कर मन को शांत एवं स्थिर बनाता है। नियमित योगाभ्यास से शरीर में तनाव हार्मोन (Cortisol) का स्तर कम होता है तथा सकारात्मक हार्मोन जैसे एंडोर्फिन एवं सेरोटोनिन का स्तर बढ़ता है, जिससे व्यक्ति अधिक प्रसन्न, आत्मविश्वासी एवं मानसिक रूप से सुदृढ़ अनुभव करता है।

खेलों में आत्मविश्वास का महत्व अनेक मनोवैज्ञानिक सिद्धांतों में भी वर्णित है। Albert Bandura के Self-Efficacy Theory के अनुसार व्यक्ति का अपनी क्षमता पर विश्वास उसके व्यवहार एवं प्रदर्शन को प्रभावित करता है। इसी प्रकार टर्मसमल (1986) ने खेल आत्मविश्वास (Sport Confidence) को खेल प्रदर्शन का प्रमुख निर्धारक माना है। जिन खिलाड़ियों में आत्मविश्वास अधिक होता है, वे प्रतियोगिता के दौरान बेहतर निर्णय लेते हैं तथा विपरीत परिस्थितियों में भी संयम बनाए रखते हैं।

आज विश्व के अनेक देशों में योग को खेल प्रशिक्षण का अभिन्न अंग बनाया जा चुका है। भारत में भी विभिन्न खेल अकादमियाँ एवं विश्वविद्यालय खिलाड़ियों के प्रशिक्षण में योग एवं ध्यान को शामिल कर रहे हैं। इसका उद्देश्य खिलाड़ियों के मानसिक स्वास्थ्य, आत्मविश्वास एवं प्रदर्शन में सुधार करना है।

वर्तमान अध्ययन इसी संदर्भ में खिलाड़ियों के आत्मविश्वास पर नियमित योगाभ्यास एवं प्राणायाम के प्रभाव का वैज्ञानिक विश्लेषण प्रस्तुत करता है।

अध्ययन के उद्देश्य

प्रस्तुत अध्ययन के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं—

1. खिलाड़ियों के आत्मविश्वास के स्तर का अध्ययन करना।
2. योगाभ्यास करने वाले एवं योगाभ्यास न करने वाले खिलाड़ियों के आत्मविश्वास की तुलना करना।
3. खिलाड़ियों के तनाव नियंत्रण एवं भावनात्मक संतुलन में योगाभ्यास की भूमिका का अध्ययन करना।

साहित्य की समीक्षा

साहित्य समीक्षा किसी भी शोध का आधार होती है। इससे यह स्पष्ट होता है कि संबंधित विषय पर पूर्व में क्या कार्य हुआ है तथा वर्तमान अध्ययन की आवश्यकता क्यों है।

Bandura (1997) ने अपनी Self-Efficacy Theory में बताया कि व्यक्ति का अपनी क्षमता पर विश्वास उसके प्रदर्शन को सीधे प्रभावित करता है। उच्च आत्म-प्रभावकारिता वाले खिलाड़ी कठिन परिस्थितियों में भी बेहतर प्रदर्शन करते हैं।

Vealey (1986) ने खेल आत्मविश्वास (Sport Confidence) का मॉडल प्रस्तुत करते हुए स्पष्ट किया कि आत्मविश्वास खेल प्रदर्शन का महत्वपूर्ण मनोवैज्ञानिक निर्धारक है। आत्मविश्वासी खिलाड़ी प्रतियोगिता के दबाव में भी अधिक सफल होते हैं।

Ryff (1989) ने मनोवैज्ञानिक कल्याण के सिद्धांत में आत्म-स्वीकृति, सकारात्मक संबंध, जीवन का उद्देश्य तथा व्यक्तिगत विकास को मानसिक स्वास्थ्य के प्रमुख घटक माना। आत्मविश्वास इन सभी आयामों से घनिष्ठ रूप से जुड़ा हुआ है।

Telles, Naveen एवं Balkrishna (2012) के अध्ययन में पाया गया कि नियमित योगाभ्यास एवं प्राणायाम तनाव एवं चिंता को कम करते हैं तथा मानसिक शांति एवं आत्मविश्वास में वृद्धि करते हैं।

Field (2016) ने योग से संबंधित अनेक अध्ययनों की समीक्षा करते हुए निष्कर्ष निकाला कि योगाभ्यास मानसिक तनाव, चिंता एवं अवसाद को कम करता है तथा आत्म-संतुष्टि एवं आत्मविश्वास को बढ़ाता है।

Gard et al. (2014) के अनुसार योग व्यक्ति की आत्म-जागरूकता, भावनात्मक नियंत्रण एवं मानसिक संतुलन को विकसित करता है, जिससे उसका आत्मविश्वास बढ़ता है।

Weinberg एवं Gould (2019) ने खेल मनोविज्ञान में मानसिक प्रशिक्षण के महत्व पर बल देते हुए बताया कि योग, ध्यान एवं श्वासन तकनीकें खिलाड़ियों के आत्मविश्वास तथा प्रतियोगी प्रदर्शन में सकारात्मक भूमिका निभाती हैं।

भारतीय संदर्भ में भी अनेक शोधों से यह प्रमाणित हुआ है कि नियमित योगाभ्यास करने वाले खिलाड़ियों में आत्मविश्वास, मानसिक दृढ़ता तथा भावनात्मक संतुलन का स्तर अधिक पाया जाता है। विभिन्न विश्वविद्यालयों एवं खेल संस्थानों में किए गए अध्ययनों ने यह संकेत दिया है कि योगाभ्यास खिलाड़ियों के समग्र व्यक्तित्व विकास में सहायक है।

उपरोक्त साहित्य से स्पष्ट है कि योगाभ्यास एवं प्राणायाम मानसिक स्वास्थ्य तथा आत्मविश्वास को बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। तथापि विश्वविद्यालय स्तर के खिलाड़ियों के आत्मविश्वास पर केंद्रित अध्ययन अपेक्षाकृत कम उपलब्ध हैं। इसलिए प्रस्तुत अध्ययन इस शोध-अंतर (Research Gap) को भरने का प्रयास करता है।

कार्यप्रणाली

1. शोध अभिकल्प

प्रस्तुत अध्ययन वर्णनात्मक (Descriptive Research Design) एवं तुलनात्मक सर्वेक्षण (Comparative Survey Method) पर आधारित है। अध्ययन का उद्देश्य नियमित योगाभ्यास एवं प्राणायाम करने वाले तथा योगाभ्यास न करने वाले खिलाड़ियों के आत्मविश्वास स्तर की तुलना करना है। अध्ययन में मात्रात्मक (Quantitative) शोध पद्धति अपनाई गई तथा सांख्यिकीय तकनीकों द्वारा परिणामों का विश्लेषण किया गया।

2. अध्ययन का क्षेत्र

अध्ययन उत्तर प्रदेश के विभिन्न विश्वविद्यालयों एवं उनसे संबद्ध महाविद्यालयों के खिलाड़ियों पर आधारित है। इसमें एथलेटिक्स, कबड्डी, वॉलीबॉल, फुटबॉल, क्रिकेट, हॉकी, बैडमिंटन एवं बास्केटबॉल जैसे खेलों के खिलाड़ियों को सम्मिलित किया गया।

3. जनसंख्या

अध्ययन की जनसंख्या में विश्वविद्यालय स्तर पर अध्ययनरत तथा नियमित रूप से विश्वविद्यालय अथवा अंतर-विश्वविद्यालय प्रतियोगिताओं में भाग लेने वाले खिलाड़ी सम्मिलित किए गए।

4. न्यादर्श

अध्ययन हेतु 100 खिलाड़ियों का चयन दैव (Random Sampling) विधि से किया गया।

न्यादर्श का वर्गीकरण

- पुरुष खिलाड़ी – 60
- महिला खिलाड़ी – 40

समूह विभाजन

- नियमित योग एवं प्राणायाम करने वाले – 50
- योगाभ्यास न करने वाले – 50

5. अध्ययन के उपकरण

अध्ययन में निम्न उपकरणों का प्रयोग किया गया।

1. व्यक्तिगत सूचना प्रपत्र (Personal Information Schedule)
2. खिलाड़ियों हेतु आत्मविश्वास मापनी (Self-Confidence Scale)
3. योगाभ्यास प्रश्नावली
4. प्रशिक्षकों से साक्षात्कार

6. आँकड़ों का संकलन

सभी खिलाड़ियों से व्यक्तिगत रूप से संपर्क स्थापित कर प्रश्नावली भरवाई गई। खिलाड़ियों को दो समूहों में विभाजित किया गया—

- नियमित योगाभ्यास एवं प्राणायाम करने वाले खिलाड़ी
- योगाभ्यास न करने वाले खिलाड़ी

दोनों समूहों के आत्मविश्वास स्तर का परीक्षण समान परिस्थितियों में किया गया।

7. सांख्यिकीय विश्लेषण

प्राप्त आँकड़ों का विश्लेषण निम्न सांख्यिकीय विधियों द्वारा किया गया।

- Mean (माध्य)
- Standard Deviation (SD)

- Percentage
- Independent t-test

सारणी-1
खिलाड़ियों का वर्गीकरण

वर्ग	संख्या	प्रतिशत
पुरुष	60	60
महिला	40	40
कुल	100	100

व्याख्या : सारणी से स्पष्ट है कि अध्ययन में कुल 100 खिलाड़ियों को सम्मिलित किया गया, जिनमें 60 पुरुष एवं 40 महिला खिलाड़ी थीं।

सारणी-2
योगाभ्यास करने वाले एवं न करने वाले खिलाड़ियों का वितरण

समूह	संख्या	प्रतिशत
योगाभ्यास करने वाले	50	50
योगाभ्यास न करने वाले	50	50
कुल	100	100

व्याख्या : दोनों समूहों में समान संख्या रखी गई जिससे तुलनात्मक अध्ययन अधिक विश्वसनीय हो सके।

सारणी-3
खिलाड़ियों के आत्मविश्वास का औसत स्कोर

समूह	Mean	Standard Deviation
योगाभ्यास करने वाले	87.46	5.84
योगाभ्यास न करने वाले	73.58	7.36

व्याख्या : सारणी से स्पष्ट है कि नियमित योगाभ्यास एवं प्राणायाम करने वाले खिलाड़ियों का औसत आत्मविश्वास स्कोर अन्य खिलाड़ियों की अपेक्षा अधिक पाया गया।

सारणी-4
आत्मविश्वास पर t-परीक्षण

समूह	Mean	t-value	निष्कर्ष
योगाभ्यास करने वाले	87.46	7.12	0.01 स्तर पर सार्थक
योगाभ्यास न करने वाले	73.58		

व्याख्या : प्राप्त ज-मूल्य (7.12) यह दर्शाता है कि दोनों समूहों के आत्मविश्वास स्तर में पाया गया अंतर सांख्यिकीय दृष्टि से अत्यंत सार्थक है।

सारणी-5
आत्मविश्वास के विभिन्न आयाम

आयाम	योगाभ्यास समूह	गैर-योग समूह
आत्मविश्वास	उच्च	मध्यम
मानसिक दृढ़ता	उच्च	मध्यम
तनाव नियंत्रण	उच्च	निम्न
निर्णय क्षमता	उच्च	मध्यम
सकारात्मक सोच	उच्च	मध्यम

व्याख्या : सारणी से स्पष्ट है कि नियमित योगाभ्यास करने वाले खिलाड़ियों ने आत्मविश्वास से संबंधित लगभग सभी आयामों में बेहतर प्रदर्शन किया।

परिणाम

अध्ययन से निम्न प्रमुख परिणाम प्राप्त हुए—

1. नियमित योगाभ्यास एवं प्राणायाम करने वाले खिलाड़ियों का आत्मविश्वास अन्य खिलाड़ियों की अपेक्षा अधिक पाया गया।
2. योगाभ्यास करने वाले खिलाड़ियों में प्रतियोगिता के समय मानसिक दबाव कम पाया गया।

3. नियमित प्राणायाम से खिलाड़ियों की सकारात्मक सोच एवं आत्म-नियंत्रण में वृद्धि देखी गई।
4. योगाभ्यास करने वाले खिलाड़ियों की निर्णय लेने की क्षमता अधिक प्रभावी पाई गई।
5. अध्ययन में प्राप्त ज-परीक्षण से दोनों समूहों के मध्य अंतर सांख्यिकीय रूप से सार्थक पाया गया।
6. नियमित योगाभ्यास करने वाले खिलाड़ियों में प्रतियोगिता के दौरान असफलता का भय अपेक्षाकृत कम पाया गया।
7. प्रशिक्षकों के मतानुसार नियमित योगाभ्यास करने वाले खिलाड़ी अधिक अनुशासित, आत्मविश्वासी एवं मानसिक रूप से स्थिर पाए गए।

विवेचना

प्रस्तुत अध्ययन के परिणाम स्पष्ट करते हैं कि नियमित योगाभ्यास एवं प्राणायाम खिलाड़ियों के आत्मविश्वास को सकारात्मक रूप से प्रभावित करते हैं। योगाभ्यास केवल शारीरिक क्षमता को ही नहीं बढ़ाता, बल्कि मानसिक दृढ़ता, आत्म-नियंत्रण तथा भावनात्मक संतुलन का भी विकास करता है। नियमित अभ्यास से खिलाड़ी प्रतियोगिताओं के दौरान तनावपूर्ण परिस्थितियों में भी शांत रहकर बेहतर निर्णय लेने में सक्षम होते हैं।

प्राप्त निष्कर्ष Bandura (1997) की Self-Efficacy Theory का समर्थन करते हैं, जिसके अनुसार व्यक्ति का अपनी क्षमता पर विश्वास उसके व्यवहार एवं प्रदर्शन को प्रभावित करता है। योगाभ्यास इस विश्वास को सुदृढ़ करने में सहायक सिद्ध होता है।

इसी प्रकार Vealey (1986) द्वारा प्रतिपादित Sport Confidence Model भी इस अध्ययन के निष्कर्षों से मेल खाता है। आत्मविश्वासी खिलाड़ी प्रतियोगिताओं में अधिक सफलता प्राप्त करते हैं क्योंकि वे दबावपूर्ण परिस्थितियों में भी अपने कौशल पर विश्वास बनाए रखते हैं।

Telles et al. (2012) तथा Field (2016) के अध्ययनों में भी यह पाया गया कि नियमित योग एवं प्राणायाम मानसिक तनाव को कम कर आत्मविश्वास तथा सकारात्मक मनोवैज्ञानिक गुणों में वृद्धि करते हैं। वर्तमान अध्ययन के परिणाम भी इन्हीं निष्कर्षों की पुष्टि करते हैं।

इस अध्ययन से यह भी स्पष्ट होता है कि विश्वविद्यालय स्तर के खिलाड़ियों के प्रशिक्षण कार्यक्रमों में योग एवं प्राणायाम को नियमित रूप से सम्मिलित किया जाना चाहिए। इससे खिलाड़ियों के आत्मविश्वास, मानसिक तैयारी तथा खेल प्रदर्शन में दीर्घकालिक सुधार संभव है।

निष्कर्ष

प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य खिलाड़ियों के आत्मविश्वास पर नियमित योगाभ्यास एवं प्राणायाम के प्रभाव का अध्ययन करना था। अध्ययन के परिणामों से यह स्पष्ट हुआ कि योगाभ्यास एवं प्राणायाम खिलाड़ियों के आत्मविश्वास को सुदृढ़ बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। नियमित योगाभ्यास करने वाले खिलाड़ियों में आत्मविश्वास, मानसिक दृढ़ता, आत्म-नियंत्रण तथा भावनात्मक स्थिरता का स्तर योगाभ्यास न करने वाले खिलाड़ियों की अपेक्षा अधिक पाया गया।

अध्ययन से यह भी स्पष्ट हुआ कि आत्मविश्वास केवल प्रतियोगिता के समय अच्छा प्रदर्शन करने तक सीमित नहीं है, बल्कि यह खिलाड़ी के संपूर्ण व्यक्तित्व, निर्णय क्षमता, लक्ष्य-निर्धारण, प्रेरणा तथा चुनौतियों का सामना करने की क्षमता को भी प्रभावित करता है। जिन खिलाड़ियों ने नियमित रूप से योगासन एवं प्राणायाम का अभ्यास किया, उनमें प्रतियोगिता के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण, तनाव नियंत्रण तथा असफलता के बाद पुनः प्रयास करने की क्षमता अधिक विकसित पाई गई।

प्राणायाम के नियमित अभ्यास से श्वसन प्रणाली एवं तंत्रिका तंत्र में संतुलन स्थापित होता है, जिससे मानसिक तनाव एवं चिंता में कमी आती है। योगासन शरीर में लचीलापन, संतुलन एवं शारीरिक दक्षता विकसित करते हैं, जबकि ध्यान (Meditation) मानसिक एकाग्रता एवं आत्म-जागरूकता को बढ़ाता है। इन सभी का संयुक्त प्रभाव खिलाड़ियों के आत्मविश्वास में वृद्धि के रूप में दिखाई देता है।

सांख्यिकीय विश्लेषण द्वारा प्राप्त परिणामों से यह भी सिद्ध हुआ कि योगाभ्यास करने वाले एवं योगाभ्यास न करने वाले खिलाड़ियों के आत्मविश्वास स्तर में पाया गया अंतर सांख्यिकीय दृष्टि से सार्थक है। यह निष्कर्ष Bandura की Self-Efficacy Theory तथा Vealey के Sport Confidence Model का समर्थन करता है।

अतः यह कहा जा सकता है कि नियमित योगाभ्यास एवं प्राणायाम खिलाड़ियों के मानसिक स्वास्थ्य, आत्मविश्वास, भावनात्मक संतुलन तथा खेल प्रदर्शन को सकारात्मक रूप से प्रभावित करते हैं। इसलिए विश्वविद्यालयों एवं खेल संस्थानों में योग को खेल प्रशिक्षण का अभिन्न अंग बनाया जाना चाहिए।

संदर्भ सूची

- American Psychological Association. (2020). *Publication manual of the American Psychological Association* (7th ed.). American Psychological Association.
- Bandura, A. (1997). *Self-efficacy: The exercise of control*. W. H. Freeman.
- Büssing, A., Michalsen, A., Khalsa, S. B. S., Telles, S., & Sherman, K. J. (2012). Effects of yoga on mental and physical health: A short summary of reviews. *Evidence-Based Complementary and Alternative Medicine*, 2012, 1–7.
- Field, T. (2016). Yoga research review. *Complementary Therapies in Clinical Practice*, 24, 145–161.
- Gard, T., Noggle, J. J., Park, C. L., Vago, D. R., & Wilson, A. (2014). Potential self-regulatory mechanisms of yoga for psychological health. *Frontiers in Human Neuroscience*, 8, 770.
- Goleman, D. (2003). *Destructive emotions*. Bantam Books.
- Kabat-Zinn, J. (2003). Mindfulness-based interventions in context. *Clinical Psychology: Science and Practice*, 10(2), 144–156.
- Keng, S. L., Smoski, M. J., & Robins, C. J. (2011). Effects of mindfulness on psychological health. *Clinical Psychology Review*, 31(6), 1041–1056.
- Morgan, W. P. (1985). Selected psychological factors limiting performance: A mental health model. In D. H. Clarke & H. M. Eckert (Eds.), *Limits of Human Performance*.
- Ryff, C. D. (1989). Happiness is everything, or is it? Explorations on the meaning of psychological well-being. *Journal of Personality and Social Psychology*, 57(6), 1069–1081.
- Seligman, M. E. P. (2011). *Flourish*. Free Press.
- Sharma, R. (2020). *Research methods in physical education and sports sciences*. Friends Publications.
- Singh, S., & Devi, R. (2018). Effect of yoga on self-confidence among university athletes. *International Journal of Physical Education, Sports and Health*, 5(4), 215–220.
- Telles, S., Naveen, K. V., & Balkrishna, A. (2012). Yoga and mental health: Current perspectives. *Indian Journal of Psychiatry*, 54(3), 227–233.
- Vealey, R. S. (1986). Conceptualization of sport-confidence and competitive orientation. *Journal of Sport Psychology*, 8(3), 221–246.
- Weinberg, R. S., & Gould, D. (2019). *Foundations of sport and exercise psychology* (7th ed.). Human Kinetics.
- Verma, J. P. (2019). *Research methodology in physical education*. McGraw-Hill Education.
- World Health Organization. (2022). *World mental health report: Transforming mental health for all*. World Health Organization.



पूर्वमध्यकालीन गंगा घाटी क्षेत्र में देवी उपासना

ऋचा चौधरी*
डॉ. अंजना वर्मा**

प्राचीन काल से ही भारतीय समाज में धर्म की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। पूर्वमध्यकालीन गंगा घाटी क्षेत्र के समाज में विभिन्न धर्मों की अपनी अलग-अलग विशेषताएं देखने को मिलती हैं। प्राचीन काल का वैदिक धर्म, हिन्दू धर्म का स्वरूप ले चुका था और वैष्णव, शैव एवं शाक्त आदि सम्प्रदायों में विभाजित हो चुका था। वैष्णव, शैव आदि भी विभिन्न उपसम्प्रदायों में विभाजित हो गए थे। बौद्ध और जैन धर्म भी कई उपसम्प्रदायों में विभाजित हो गए थे। मूर्तिपूजा का प्रचलन बढ़ने के कारण भी धर्मों में विभिन्न मतावलम्बियों का उदय हुआ।

हिन्दू धर्म से जुड़े सम्प्रदाय

पूर्वमध्यकाल में हिन्दू धर्म का भक्ति एवं पौराणिक धर्म के रूप में कुछ नयी विशेषताओं के साथ उद्भव हुआ। इस काल में हिन्दू धर्म का आधार तो वैदिक धर्म के विधिविधान ही थे लेकिन अपने प्रकृति और स्वरूप में इसमें कुछ भिन्नता भी आ गयी थी। विवेच्य काल में हिन्दू धर्म तीन मुख्य धार्मिक सम्प्रदायों में विभक्त हो गया। ये सम्प्रदाय थे— वैष्णव, शैव और शाक्त। इन सम्प्रदायों को विभिन्न राजवंशों का संरक्षण प्राप्त हुआ। विष्णु और शिव को केन्द्र में रखकर इस काल में अलग-अलग उपासकों के संगठन भी संगठित रूप ग्रहण कर रहे थे। वहीं दूसरी तरफ ये सभी 'बहुदेववाद' समुदाय के सदस्यों के रूप में सम्मिलित रूप में दृष्टिगोचर हो रहे थे। 'एकेश्वरवाद' का स्वरूप हिन्दू धर्म में बहुत ही महत्वपूर्ण है, जिसमें एक परमेश्वर को मानने के साथ ही अन्य देवी देवताओं के अस्तित्व को भी स्वीकार किया जाता है।

स्त्री की शक्ति के रूप में पूजा आराधना

वैदिक काल से ही देवियों की उपासना होती रही है। पूर्वमध्यकालीन गंगा घाटी क्षेत्र में तांत्रिक संस्कृति के बढ़ते प्रभाव के कारण स्त्री की कल्पना 'शक्ति' के रूप में की जाने लगी। इसकी वजह से इस काल में देवियों की संख्या में काफी वृद्धि देखने को मिलती है। हिन्दू धर्म में स्त्री शक्ति की आराधना बहुत लम्बे समय से चली आ रही है। इसका प्रमाण हमें प्रागैतिहासिक काल से ही मिलने लगता है। सिन्धु घाटी सभ्यता में भी मातृदेवी की उपासना उर्वरता एवं सृजनशक्ति के रूप में होती थी। मैके ने हड़प्पा से प्राप्त गर्भवती स्त्री की मृण मूर्ति को माँ के देवी स्वरूप का प्रतीकात्मक प्रतिनिधि माना है। जगन्माता की पूजा की यह परम्परा धीरे-धीरे शक्ति उपासना के रूप में बदल गयी और उसकी समानता भगवान शिव की शक्ति के रूप में की जाने लगी। तांत्रिक हिन्दू धर्म के प्रभाव से शक्ति उपासना अपने विकसित रूप में स्थापित हुई।

शक्ति से संबंधित पौराणिक स्थान वैदिक विचारधारा का ही परिवर्तित स्वरूप है। वैदिक वाङ्मय में स्थापित भवानी, रुद्राणी जैसे शब्द कालांतर की शक्ति का ही पर्याय हैं और इनकी सत्ता रुद्र, शिव में समाहित है। उपनिषदों में शक्ति को ब्रह्म की आंतरिक ऊर्जा और ज्ञान-स्वरूप स्वीकार किया गया है तथा इनकी उपासना भवानी, अम्बिका, भद्रकाली, उमा एवं दुर्गा आदि विभिन्न नामों से की गई है।

शक्ति को माता के रूप में माना गया और इसे माया कहा गया है, जिसके सहयोग से ब्रह्मा ने समस्त सृष्टि की रचना की है। दीर्घकाल में स्त्री की उपासना ने बौद्ध धर्म पर भी अपना प्रभाव डाला और बौद्ध धर्म में महायान बौद्ध धर्म के विकास के साथ ही शक्ति उपासना भी आरम्भ हो गयी।

शक्ति की आराधना की लोकप्रियता गुप्तकाल के आने तक बढ़ गयी और इसके साथ ही ब्राह्मण धर्म में देवियों की संख्या भी बढ़ने लगी। इसका आधार निर्गुण ब्रह्म का लिंग रूप में संसृति तथा वैज्ञानिक विभाजन था, जिसमें प्रकृति और पुरुष तथा माया और ब्रह्म शक्ति थे। रघुवंश में मंगलाचरण में तांत्रिक संस्कृति की मूल भावना ब्रह्माण्ड के सृजनकर्ता शिव और पार्वती एवं देवता में एकता की अभिन्नता अभिव्यक्त है।

जहाँ तक शक्ति के स्वतंत्र अस्तित्व के विकास का प्रश्न है तो इसका विकास 'शाक्त धर्म' के अन्तर्गत पौराणिक युग में हुआ। पौराणिक युग की शक्ति एक स्वतंत्र एवं व्यापक देवी हैं जिसमें ब्रह्मा, विष्णु,

* असिस्टेंट प्रोफेसर, इतिहास विभाग, राजकीय महाविद्यालय, पलही पट्टी, वाराणसी

** असिस्टेंट प्रोफेसर, इतिहास विभाग, महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी

शिव, इन्द्र इत्यादि की शक्ति समाहित है। शाक्त धर्म से संबंधित महत्वपूर्ण ग्रंथ देवी भागवत और मार्कण्डेय पुराण है। मार्कण्डेय पुराण में आद्यशक्ति भगवती अथवा महामाया को सभी देवताओं के सम्मिलित तेज के रूप में माना गया है। महाशक्ति से परिपूर्ण दिव्य स्त्री का रूप देवताओं के समस्त कार्यों को सिद्ध करता है।

विवेच्यकाल भारतीय धर्म के इतिहास में तांत्रिक साधना के उद्भव और विकास का युग रहा है। तन्त्र साधना से तात्पर्य है नारी-शक्ति और पुरुष-शक्ति के आपसी समन्वय के माध्यम से विभिन्न प्रकार की साधनाओं, पूजा पद्धतियों तथा आधारों से सिद्धि तथा मोक्ष की प्राप्ति का सहज विज्ञान। सामान्यतः सभी धर्मों में तांत्रिक साधना का स्वरूप विद्यमान है तथा शक्तिवाद को महत्व प्रदान किया गया है एवं पुरुष शक्ति और नारी शक्ति की एकता को मान्यता प्रदान की गयी है। इसे भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों में भिन्न-भिन्न नामों से संबोधित किया गया है। उदाहरण के लिए शैव और शाक्त धर्म में "शिव और शक्ति", वैष्णव और पांचरात्र में "विष्णु और लक्ष्मी", "राम-सीता" तथा "कृष्ण-राधा", बौद्ध धर्म में "उपाय और प्रज्ञा" के नाम से संबोधित किया जाना जाता है। ये समस्त नाम पुरुष-शक्ति और नारी-शक्ति के प्रतीक हैं।

पूर्वमध्यकाल में स्त्री को मोक्ष के मार्ग के रूप में स्वीकार किया गया है तथा तांत्रिक साधनों में प्रवृत्ति द्वारा सिद्धि और मुक्ति को कामोपभोग के माध्यम से प्राप्त करने का प्रयास किया गया है। फलस्वरूप इस युग के सभी धार्मिक सम्प्रदायों में तांत्रिक साधना का व्यापक प्रचार प्रसार हुआ। इस काल में वैष्णव, भागवत, पांचरात्र, शैव, शक्ति, बौद्ध एवं जैन आदि सभी सम्प्रदायों ने तांत्रिक प्रवृत्तियों को किसी न किसी रूप में अपना लिया था। इसीलिए इस युग को तांत्रिक युग भी कहा जाता है।

विभिन्न धर्मों में शक्ति उपासना

शाक्त धर्म

शाक्त धर्म हिन्दू धर्म का एक प्रमुख सम्प्रदाय है जिसमें शक्ति या देवी को ही परम सत्ता और ब्रह्म का स्वरूप माना जाता है। यहाँ देवी किसी देवता की सहचरी मात्र नहीं है, बल्कि वह स्वयं सृष्टि, स्थिति और संहार की अधिष्ठात्री मानी जाती है। हिन्दू धर्म में प्राचीनकाल से ही शक्ति की उपासना का प्रचलन रहा है। शक्ति अपने प्रारम्भिक स्वरूप में शिव की पत्नी पार्वती या उमा हैं जिन्हें 'जगत् जननी' भी कहा जाता है।

शाक्त मत के अनुसार शिव बिना शक्ति के 'शव' के समान हैं अर्थात् शक्ति ही समस्त सृष्टि की गतिशील ऊर्जा है। देवी महात्म्य (दुर्गा सप्तशती) शाक्त धर्म का आधार ग्रन्थ है जिसमें देवी को सर्वोच्च ब्रह्म कहा गया है इसके अलावा देवी भागवत पुराण में भी देवी को आदि शक्ति और जगत्जननी के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है। 'मार्कण्डेयपुराण' के देवी महात्म्य में महिषासुर का मर्दन करने वाली देवी की स्तुति के श्लोक हैं; जो समस्त देवताओं की सम्मिलित शक्ति से उत्पन्न हुई तथा वास्तविक शक्ति देवी हुई। ढाका के संग्रहालय में इस देवी की एक सुन्दर मूर्ति रखी हुई है। विभिन्न ऐतिहासिक स्थलों से प्राप्त साक्ष्यों में दुर्गा की महिषासुरमर्दिनी स्वरूप को अभिव्यक्त करती हुई प्रतिमाएं प्राप्त हुई हैं जिससे यह ज्ञात होता है कि देवी के इस स्वरूप की उपासना पहले से ही की जाती रही है।

देवी की उपासना नारायणी के रूप में भी होती है। नारायणी स्तुति में, संसार की रक्षा करने वाली शक्ति के रूप में देवी का वर्णन मिलता है। देवी के नवमातृका स्वरूप का भी वर्णन इसमें मिलता है। इसमें देवी के कात्यायनी, नारायणी, लक्ष्मी, सरस्वती, दुर्गा, अंबिका और भद्रकाली जैसे स्वरूपों का वर्णन है।

देवी दुर्गा की पूजा सप्तमातृका या सात रूपों में से एक माता के रूप में भी की जाती है। देवी के ये विभिन्न रूप विविध, देवताओं से जुड़ी हुई शक्तियां हैं जो देवताओं द्वारा, राक्षसों का वध करने के लिए देवी को दी गयीं थीं। सप्तमातृकाओं से जुड़े बहुत सारे अभिलेखीय प्रमाण भी प्राप्त हुए हैं। उदाहरण के लिए पाशपुरा नरेश विश्ववर्मन के राजमन्त्री कुम्भराज द्वारा निर्मित कराए गए एक मंदिर का उल्लेख मिलता है।

सप्तमातृकाओं के साथ ही योगिनियों को भी देवी से जुड़े सम्प्रदायों के अन्तर्गत माना जाता है। पूर्वमध्यकालीन गंगा घाटी क्षेत्र में योगिनियों की संख्या चौसठ मानी गयी है। इनका उल्लेख शुम्भ-निशुम्भ राक्षसों का संहार करने वाली दुर्गा की सहायिका के रूप में किया गया है। पूर्वमध्यकाल में तांत्रिक साधनाओं का प्रभाव बढ़ गया था। शाक्त धर्म में यंत्र, मंत्र और तंत्र के माध्यम से देवी की उपासना की जाती थी। बंगाल, असम और कश्मीर क्षेत्र में शाक्त मत का विशेष प्रसार हुआ। असम का कामाख्या मंदिर शक्ति उपासना का प्रमुख केन्द्र बन गया। विवेच्य काल में बंगाल और असम के आस-पास के क्षेत्रों में शाक्त ग्रंथ 'कालिकापुराण' का संकलन किया गया। जिसमें देवी के शांत स्वरूप में, उनकी सशक्त वासनात्मक स्वरूप को प्रदर्शित किया गया है और देवी के रौद्र रूप की उपासना शमशानों में भी किए जाने का उल्लेख किया गया है। कालिका पुराण में देवी की अराधना में तंत्रवाद का स्पष्ट प्रभाव दिखायी देता है।

देवी की अराधना के वामभाव स्वरूप पर तंत्रवाद का प्रभाव था जबकि दक्षिणभाव में कर्मकाण्डी अनुष्ठानों का वर्णन था, जिसमें नरबलि और पशुबलि भी है। स्थानीय देवियों के अराधना के संदर्भ में कुणाल चक्रवर्ती ने अपने अध्ययन में यह दर्शाया है कि बंगाल में ब्राह्मण धर्म और स्थानीय देवियों की उपासना की परम्पराओं के समन्वय से क्षेत्रीय संस्कृतियों का एकीकरण हुआ और इससे देवी की अराधना को बल मिला। कालिकापुराण में देवी से जुड़े सात शक्ति पीठों का भी उल्लेख मिलता है। इन सात शक्ति पीठों का निर्माण उन स्थानों पर हुआ है जहाँ पर देवी सती के शरीर के विभिन्न अंग गिरे थे।

पूर्वमध्यकाल में शाक्त धर्म सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन से भी जुड़ा था। इस काल में नवरात्रि और दुर्गापूजा जैसे उत्सवों का विस्तार हुआ, विशेषकर बंगाल के क्षेत्र में, और देवी की अराधना लोकजीवन का अंग बन गयी।

इस प्रकार पूर्वमध्यकालीन गंगा घाटी में शाक्त धर्म मात्र उपासना पद्धति नहीं रहा, बल्कि यह एक सशक्त दार्शनिक तांत्रिक और सांस्कृतिक आन्दोलन के रूप में विकसित हुआ और इसने भारत के धार्मिक जीवन में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर लिया। देवी को सर्वोच्च सत्ता मानने की यह परम्परा समाज में शक्ति की अवधारणा को दृढ़ता प्रदान करती है जो उस काल की धार्मिक विविधता को भी दर्शाती है।

भागवत धर्म में शक्ति की पूजा

भागवत धर्म में ईश्वर की माया या योगमाया के रूप में शक्ति को स्वीकार किया गया है। ईश्वर की सृजनात्मक, पालनकारी और संहारक शक्तियाँ उसी की अभिव्यक्ति मानी गयी है। भगवान श्री कृष्ण की लीलाओं में योगमाया की विशेष भूमिका बताई गयी है, जो उनकी दिव्य शक्ति का ही रूप है।

भागवत धर्म में चतुर्व्यूह की रहस्यात्मक पूजा होती थी जिसने कालान्तर में तांत्रिक साधना का स्वरूप ग्रहण कर लिया तथा इसका प्रभाव उत्तर भारत में मथुरा मण्डल से लेकर पूर्वी प्रदेशों में व्यापक स्तर पर रहा। मथुरा मण्डल में अपनायी गयी विधि में वैष्णवी उपासना का महत्व ज्यादा था परन्तु पूर्वी प्रदेशों में सिद्ध शैव, शाक्त पीठों की तरह “वासुदेव पीठ” स्थापित हुए। “कालिका पुराण” में वासुदेव पीठ की पूजा विधि का उल्लेख मिलता है, जिसमें वासुदेव की प्रिया ‘विमला देवी’ की उपासना विख्यात थी। भागवत धर्म में प्रचलित तंत्र साधना में शक्ति सहित उपासक की भक्ति तथा उपास्य के समीप होने की इच्छा पर जोर दिया गया था।

श्रीमद्भागवत महापुराण में विभिन्न स्थलों पर देवी की स्तुति प्राप्त होती है उदाहरणस्वरूप, कंस ने जब कन्या को मारने का प्रयास किया तब वह कन्या देवी के रूप में प्रकट होकर अपनी दिव्यता प्रकट करती है। यह घटना दर्शाती है कि शक्ति को स्वतंत्र और पूजनीय सत्ता के रूप में स्वीकार किया गया है। भागवत परम्परा में राधा को कृष्ण की आह्लादिनी शक्ति माना गया है। यद्यपि राधा का विस्तारपूर्वक वर्णन अन्य ग्रन्थों में अधिक मिलता है, फिर भी वैष्णव धर्म में उन्हें शक्ति स्वरूपा माना गया है। इसी तरह लक्ष्मी को विष्णु की शक्ति और समृद्धि की अधिष्ठात्री देवी माना गया है।

भागवत धर्म में भक्ति को सर्वोच्च साधन माना गया है। यहाँ पर ‘शक्ति’ की उपासना पृथक् रूप में नहीं, बल्कि भगवान की भक्ति के साथ समन्वित रूप में प्रकट होती है। ‘शक्ति’ को भगवान की कार्यकारी शक्ति समझा गया है, जो भक्त और भगवान के मध्य संबंध स्थापित करती है। सेन नरेश लक्ष्मण सेन के दरबारी कवि जयदेव ने 12वीं शताब्दी में “गीतगोविन्द” की रचना करके कृष्ण भक्ति में राधा के महत्व को स्थापित कर दिया था। यह एक उच्च कोटि की साहित्यिक रचना के साथ ही एक शक्तिशाली कामशास्त्री रचना के रूप में भी जानी जाती है। विष्णु की प्रतिमाओं के साथ लक्ष्मी, भूदेवी और सरस्वती को भी प्रायः देखा जाता है।

कालान्तर में भागवत धर्म में उपासना भक्ति का सर्वोच्च रूप “रास” को माना गया। एक तांत्रिक ग्रंथ “हंस विलास” में रास का अर्थ स्पष्ट करते हुए कहा गया है कि “आनन्द ब्रह्मस्वरूप है और वह इस शरीर में स्थित है। इस आनन्द का अभिव्यंजक “रास” है और उसमें तत्पर व्यक्ति “रसिक” कहलाता है।”

अलवार संत नम्मलवार ने भक्त और भगवान के मध्य संबंध, अकम काव्य शैली में प्रेमी तथा प्रेमिका के रूप में किया है। कृष्ण और गोपियों के संबंध की कथाओं विशेषकर पिन्नई नामक गोपी के साथ का वर्णन भावुकता तथा कामुकता का बोध कराता है। इस काल में कोडई नामक महिला संत के काव्य में सर्वाधिक कामुकता देखने को मिलती है, ये ‘आंडल’ के नाम से विख्यात हुईं। अलवार संतों में आंडल एक मात्र महिला संत थी। इनका भजन विरह की पीड़ा लिए हुए है तथा ईश्वर से मिलने की उत्कण्ठा से ओत-प्रोत है। इस

प्रकार भागवत धर्म में शक्ति उपासना प्रत्यक्ष रूप से शाक्त धर्म की तरह स्वतंत्र नहीं है, बल्कि विष्णु या कृष्ण की दिव्य शक्ति के रूप में समाहित है।

शैव धर्म में शक्ति की पूजा

शैव दर्शन में शक्ति और शिव को अभिन्न माना गया है। शिव को चेतना तथा शक्ति को उनकी क्रियाशील ऊर्जा माना गया है। इसीलिए शैव धर्म में शक्ति की उपासना का महत्वपूर्ण स्थान है। शैव आगमों और तांत्रिक ग्रंथों में कहा गया है कि बिना शक्ति के शिव "शव" के समान हैं अर्थात् शक्ति ही सृष्टि, स्थिति और संहार की प्रेरणा शक्ति है। कश्मीरी शैववाद में शक्ति को "स्पंद" (कंपन या ऊर्जा) कहा गया है, जो समस्त ब्रह्माण्ड की गतिशीलता का मूल है।

शैव परंपरा में शक्ति की पूजा अनेक रूपों में की जाती है। शिव की सहचरी देवी के रूप में इनकी स्वतंत्र उपासना का विकास शैवमत के प्रादुर्भाव के साथ ही होने लगा था। इनके दो रूप माने गए थे – सौम्य रूप में वे शिव की पत्नी पार्वती थीं दूसरी तरफ राक्षसों का विनाश करने वाली भयानक शक्तिशाली देवता थीं किन्तु ये दोनों रूप एक दूसरे से जुड़े हुए थे। माहेश्वरी के रूप में जब देवी की कल्पना की गयी, तो उसे पशुबलि दी जाती थी। 'ग्रामदेवता' के रूप में अनेक ग्रामों में दुर्गा की उपासना की जाती थी। इन्हें मातृकाएँ कहा गया है एवं इनकी उत्पत्ति के संबंध में ऐसा माना जाता है कि शिव जी ने असुरों के विरुद्ध युद्ध में अपनी सहायता के लिए इन्हें उत्पन्न किया था।

भगवान का अर्धनारीश्वर स्वरूप शिव और शक्ति की एकता का प्रतीक है। यह स्पष्ट करता है कि सृष्टि संचालन में दोनों की संयुक्त और समान भूमिका है। शैव धर्म की तांत्रिक शाखाओं में शक्ति की उपासना का महत्वपूर्ण स्थान है। यंत्र, मंत्र और ध्यान के द्वारा शक्ति की अराधना की जाती है। शिव और शक्ति को पृथक-पृथक न मानकर एक ही परम सत्य के दो पक्ष माना गया है। इसीलिए शैव परम्परा में शक्ति की उपासना शिव-भक्ति का अनिवार्य अंग है।

बौद्ध धर्म और शक्ति उपासना

महायान बौद्ध धर्म में बोधिसत्त्वों और देवियों की अवधारणा का विकास हुआ। यहाँ करुणा और प्रज्ञा को दिव्य रूपों में व्यक्त किया गया है। उदाहरण के लिए तारा को करुणा और रक्षण की देवी माना गया। प्रज्ञापारमिता को ज्ञान की देवी के रूप में सम्मानित किया गया। इन रूपों में ज्ञान और करुणा की दिव्य ऊर्जा के रूप में शक्ति को देखा गया। पूर्वमध्यकाल में बौद्ध धर्म के वज्रयान सम्प्रदाय में शक्ति उपासना अधिक स्पष्ट रूप से दिखती है। शिव और शक्ति की उपासना बौद्ध धर्म में प्रज्ञा (ज्ञान) और उपाय (करुणा) के रूप में दिखती है। यहाँ देवी देवताओं की युगल (याब-युम) प्रतिमाएँ मिलती हैं। इस परंपरा में साधक मंत्र, मुद्रा और ध्यान के द्वारा दिव्य शक्ति का अनुभव करने की कोशिश करता है।

वज्रयान सम्प्रदाय में वज्रतारा के रूप में शक्ति की उपासना प्रारम्भ हो गयी। तारा की व्युत्पत्ति अवलोकितेश्वर की अश्रुधारा के रूप में हुई। पूर्वमध्यकाल में तारा को अवलोकितेश्वर की शक्ति के रूप में माना गया। बौद्ध धर्म के तांत्रिक सम्प्रदाय में तारा को बुद्ध की शक्ति माना गया। बौद्ध धर्म में शक्ति कोई सृष्टिकर्ता देवी नहीं है, बल्कि बोध और मुक्ति की आध्यात्मिक शक्ति का रूप है।

जैन धर्म और शक्ति की उपासना

जैन धर्म के श्वेताम्बर सम्प्रदाय में पच्चीस देवियों के नामों का उल्लेख मिलता है जिनमें कोट्टकिरिया एवं आर्या प्रमुख देवियाँ हैं जिनमें दुर्गा का रूप समाहित है। इन दोनों को ही दुर्गा का रूप माना गया है और इन्हें चण्डिका या चौमुण्डा भी कहा गया है।

इस प्रकार पूर्वमध्यकालीन भारतीय धार्मिक परम्परा में देवी उपासना का व्यापक विकास हुआ। विभिन्न धर्मों ने देवी को पृथक-पृथक रूपों में स्वीकार किया, लेकिन सभी में देवी को शक्ति, ज्ञान, समृद्धि एवं संरक्षण का प्रतीक माना गया। दुर्गा, काली, सरस्वती, लक्ष्मी और पार्वती जैसी देवियों की उपासना हिन्दू धर्म में अत्यन्त लोकप्रिय हुई तथा शाक्त परम्परा का विशेष उत्कर्ष हुआ। शैव और वैष्णव सम्प्रदायों में भी शक्ति को शिव और विष्णु की अनिवार्य सहचरी माना गया। बौद्ध धर्म, विशेषकर वज्रयान परंपरा में तारा प्रज्ञापारमिता और वज्रयोगिनी जैसी देवियों को करुणा ज्ञान एवं आध्यात्मिक मुक्ति का स्वरूप माना गया। जैन धर्म में पद्मावती, अंबिका और चक्रेश्वरी की पूजा रक्षक देवियों के रूप में प्रचलित हुई।

इस प्रकार पूर्वमध्यकाल में देवी-उपासना केवल धार्मिक आस्था तक सीमित नहीं रही बल्कि उसने कला, मूर्तिकला मंदिर वास्तुकला, साहित्य एवं सामाजिक जीवन को भी गहराई से प्रभावित किया।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. केशव चन्द्र मिश्र, "चंदेल और उनका राजत्व काल" पृ०-204
2. डॉ० राधेशरण, "प्राचीन भारत का राजनैतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास", पृ०-382
3. हाक्स एण्ड वूली, "हिस्ट्री आफ मेनकाइंड", जिल्द 1, पृ० 213 से 14
4. मैके, चन्हूदड़ो एस्कावेशंस, 1935-36, पृ० 151-52
5. डॉ० उर्मिला प्रकाश मिश्र, "प्राचीन भारत में नारी", पृ० 156, 157, 158
6. कालीदास रघुवंश 1.1
7. ब्रज के धर्म सम्प्रदायों का इतिहास, पृ० 109, 132
8. उपिन्दर सिंह, "प्राचीन एवं पूर्व मध्यकालीन भारत का इतिहास (पाषाण काल से बारहवी शताब्दी तक)" पृ० 552, 555, 557, 558, 559
9. आइकोनोग्राफी आफ बुद्धिस्ट एण्ड ब्राह्मणिकल स्कल्पचर इन ढाका म्युजियम पृ०-191
10. संत वैष्णव काव्य पर तांत्रिक प्रभाव, पृ० 144-97-49
11. मत्स्य पुराण, 158.11
12. सिद्ध साहित्य, पृ०-144
13. पिंडानर्युक्त टीका, 441
14. आचारांग चूर्णी पृ० 61
15. निशीथ चूर्णी, 13.4400



जयप्रकाश नारायण की क्रांतिकारी भारतीय समाजवादी आंदोलन में भूमिका एवं योगदान

डॉ. रत्ना कुमारी*

सारांश

जयप्रकाश नारायण आधुनिक भारत के प्रमुख राजनीतिक चिंतक एवं जननेता थे, जिन्होंने स्वतंत्रता संग्राम से लेकर लोकतांत्रिक पुनर्निर्माण तक महत्वपूर्ण योगदान दिया। उनका राजनीतिक दर्शन समाजवाद, सर्वोदय, दलविहीन लोकतंत्र, विकेन्द्रीकरण और सम्पूर्ण क्रांति जैसे सिद्धांतों पर आधारित था। प्रारम्भ में वे मार्क्सवाद से प्रभावित थे, किन्तु बाद में गांधीवादी विचारों, अहिंसा, ग्राम स्वराज और जनसहभागिता को भारतीय लोकतंत्र के लिए अधिक उपयुक्त माना। उन्होंने नैतिक राजनीति, लोकशक्ति और जनभागीदारी को लोकतंत्र का आधार बताया। 1974 की उनकी सम्पूर्ण क्रांति सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, शैक्षिक और नैतिक परिवर्तन का व्यापक आंदोलन थी। यह अध्ययन ऐतिहासिक एवं विश्लेषणात्मक पद्धति पर आधारित है और निष्कर्ष रूप में स्पष्ट करता है कि जयप्रकाश नारायण के विचार आज भी सुशासन, सामाजिक न्याय, सहभागी लोकतंत्र तथा नैतिक राजनीति के लिए अत्यंत प्रासंगिक और प्रेरणादायक हैं।

मुख्य शब्द: राजनीतिक दर्शन, समाजवाद, सर्वोदय, सम्पूर्ण क्रांति, दलविहीन लोकतंत्र, लोकतांत्रिक समाजवाद, ग्राम स्वराज, सामाजिक न्याय।

परिचय

जयप्रकाश नारायण, जिन्हें स्नेहपूर्वक "जेपी" के नाम से जाना जाता है, भारत के सबसे समर्पित, आदर्शवादी और जनप्रिय नेताओं में गिने जाते हैं। वे केवल एक स्वतंत्रता सेनानी ही नहीं, बल्कि राष्ट्रनिर्माता, समाजवादी चिंतक और लोकतांत्रिक मूल्यों के प्रबल समर्थक भी थे। उन्होंने अपने पूरे जीवन में किसी एक विचारधारा या "वाद" की कठोर सीमाओं में स्वयं को नहीं बाँधा। उनके लिए राष्ट्रहित, जनकल्याण और सामाजिक न्याय सर्वोपरि थे। उनके नाम "जेपी" का प्रतीकात्मक अर्थ "प्रकाश की विजय" माना जाता है, जो उनके व्यक्तित्व और जीवन-दर्शन को सार्थक रूप से अभिव्यक्त करता है।

जयप्रकाश नारायण का जन्म 11 अक्टूबर 1902 को बिहार के सारण जिले के सिताबदियारा गाँव में हुआ। प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त करने के बाद वे उच्च शिक्षा के लिए संयुक्त राज्य अमेरिका गए। वहाँ अध्ययन के दौरान उन्होंने समाजवादी तथा मार्क्सवादी विचारों का गहन अध्ययन किया और उनसे प्रभावित हुए। अमेरिका में रहते हुए उन्होंने श्रम, समानता और सामाजिक न्याय के सिद्धांतों को निकट से समझा, जिसने उनके राजनीतिक और सामाजिक चिंतन को नई दिशा प्रदान की।

भारत लौटने के बाद उन्होंने पंडित जवाहरलाल नेहरू के आह्वान पर भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस में प्रवेश किया और ब्रिटिश शासन से देश को स्वतंत्र कराने के आंदोलन में सक्रिय रूप से भाग लिया। महात्मा गांधी के अतिरिक्त लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक के निर्भीक राष्ट्रवादी विचारों का भी उन पर गहरा प्रभाव पड़ा। गांधीजी के सत्य, अहिंसा और सादगीपूर्ण जीवन के आदर्शों को अपनाते हुए उन्होंने स्वयं भी सरल जीवन जीने और राष्ट्रसेवा को अपना सर्वोच्च कर्तव्य बना लिया।

लगभग अठारह वर्ष की आयु में उनका विवाह प्रभावती देवी से हुआ। यह विवाह उनके सार्वजनिक जीवन के लिए भी अत्यंत महत्वपूर्ण सिद्ध हुआ। उनके ससुर एक प्रतिष्ठित राष्ट्रीय नेता थे, जिनके माध्यम से जयप्रकाश नारायण का संपर्क अनेक प्रमुख स्वतंत्रता सेनानियों और राजनीतिक नेताओं से हुआ। इससे उन्हें राष्ट्रीय आंदोलन में सक्रिय भूमिका निभाने का अवसर मिला।

स्वतंत्रता संग्राम के दौरान जयप्रकाश नारायण ने अनेक आंदोलनों में सक्रिय भाग लिया और कई बार ब्रिटिश सरकार द्वारा कारावास का सामना किया। उन्होंने कठिन परिस्थितियों में भी अपने सिद्धांतों से कभी समझौता नहीं किया तथा भारतीय समाजवादी आंदोलन के प्रमुख नेता के रूप में सामाजिक और आर्थिक समानता की स्थापना के लिए निरंतर कार्य किया।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भी उन्होंने लोकतंत्र, सामाजिक न्याय और समानता पर आधारित समाज के निर्माण को अपना लक्ष्य बनाए रखा। उनका विश्वास था कि वास्तविक लोकतंत्र तभी सशक्त होगा जब प्रत्येक नागरिक को समान अवसर, स्वतंत्रता और सम्मान प्राप्त हो। उनके जीवन के मूल आदर्श स्वतंत्रता, समानता, नैतिक राजनीति और जनसेवा थे। आज भी उनके विचार लोकतांत्रिक मूल्यों, सामाजिक परिवर्तन और नैतिक नेतृत्व के लिए प्रेरणास्रोत बने हुए हैं।

* यमुना, मकान संख्या-9, वास्तु विहार, बैजनाथपुर, सहरसा, बिहार – 852221

जयप्रकाश नारायण की क्रांतिकारी भूमिका

उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए संयुक्त राज्य अमेरिका गए जयप्रकाश नारायण ने वहाँ समाजवादी और मार्क्सवादी विचारधाराओं का गंभीर अध्ययन किया। भारत लौटने के बाद उन्होंने 1929 में पंडित जवाहरलाल नेहरू के आह्वान पर भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की सदस्यता ग्रहण की और ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन के विरुद्ध स्वतंत्रता संग्राम में सक्रिय रूप से भाग लेना प्रारम्भ किया। इसके साथ ही उनका सार्वजनिक जीवन राष्ट्रीय मुक्ति, सामाजिक परिवर्तन और लोकतांत्रिक मूल्यों के लिए समर्पित हो गया (के. एन. पाठक, 2014; वी. डी. महाजन, 1998)।

सविनय अवज्ञा आंदोलन में सक्रिय भागीदारी के कारण वर्ष 1932 में उन्हें ब्रिटिश सरकार ने गिरफ्तार कर नासिक कारागार भेज दिया। इसी जेल में उनकी निकटता अशोक मेहता, मीनू मसानी, डॉ. राममनोहर लोहिया, सी. के. नारायणस्वामी तथा अन्य समाजवादी विचारकों से हुई। इन संपर्कों ने उनके राजनीतिक चिंतन को नई दिशा प्रदान की और वे कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के प्रमुख नेताओं में शामिल हो गए। पार्टी के महासचिव के रूप में उन्होंने भारतीय जनता से आह्वान किया कि द्वितीय विश्वयुद्ध की परिस्थितियों का उपयोग ब्रिटिश शासन को समाप्त करने के लिए किया जाना चाहिए। इस कारण उन्हें पुनः कारावास का सामना करना पड़ा (के. एन. पाठक, 2014; वी. डी. महाजन, 1998)।

जेल से मुक्त होने के बाद जयप्रकाश नारायण ने महात्मा गांधी और सुभाषचंद्र बोस के बीच आंदोलन की रणनीति को लेकर उत्पन्न मतभेदों को दूर करने का प्रयास किया। यद्यपि यह प्रयास सफल नहीं हो सका, फिर भी इससे उनके समन्वयवादी दृष्टिकोण तथा राष्ट्रीय एकता के प्रति उनकी प्रतिबद्धता स्पष्ट होती है (ए. के. गांधी, 2016, पृ. 37)।

अगस्त 1942 के भारत छोड़ो आंदोलन में सक्रिय भागीदारी के कारण उन्हें पुनः गिरफ्तार कर हजारीबाग केंद्रीय कारागार में बंद कर दिया गया। नवंबर 1942 में दीपावली के अवसर पर उन्होंने अपने साथियों के साथ साहसिक ढंग से जेल से पलायन किया। यह घटना भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के इतिहास की सबसे उल्लेखनीय घटनाओं में गिनी जाती है और इसके बाद वे जनता के बीच एक निर्भीक क्रांतिकारी नेता के रूप में प्रतिष्ठित हुए (वी. डी. महाजन, 1998; ए. के. गांधी, 2016, पृ. 37)।

कारागार से निकलने के बाद उन्होंने भूमिगत रहकर स्वतंत्रता आंदोलन का नेतृत्व किया। ब्रिटिश शासन के विरुद्ध संघर्ष को संगठित करने के उद्देश्य से नेपाल में "आज़ाद दस्ता" का गठन किया, जिसने क्रांतिकारी गतिविधियों के संचालन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। सितंबर 1943 में पंजाब से यात्रा के दौरान उन्हें पुनः गिरफ्तार कर लिया गया। हिरासत में उनसे कठोर पूछताछ की गई तथा शारीरिक यातनाएँ भी दी गईं, किन्तु उन्होंने अपने साथियों अथवा आंदोलन से संबंधित कोई गोपनीय जानकारी नहीं दी (ए. के. गांधी, 2016, पृ. 37)।

महात्मा गांधी ने अप्रैल 1946 में ब्रिटिश सरकार के साथ वार्ता प्रारम्भ करने से पहले जयप्रकाश नारायण और डॉ. राममनोहर लोहिया की बिना शर्त रिहाई को आवश्यक शर्त बनाया। इससे स्पष्ट होता है कि स्वतंत्रता आंदोलन में जयप्रकाश नारायण का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण था और राष्ट्रीय नेतृत्व उनके साहस, त्याग तथा संगठनात्मक क्षमता का सम्मान करता था (ए. के. गांधी, 2016, पृ. 37)।

जयप्रकाश नारायण का समूचा जीवन अन्याय, शोषण, भ्रष्टाचार और सामाजिक असमानता के विरुद्ध सतत संघर्ष का पर्याय रहा। वे केवल राजनीतिक स्वतंत्रता तक सीमित नहीं रहे, बल्कि ऐसी लोकतांत्रिक व्यवस्था की स्थापना के पक्षधर थे जिसमें प्रत्येक नागरिक को सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय प्राप्त हो। इसी उद्देश्य से उन्होंने अपने जीवन के अंतिम क्षण तक समानता, स्वतंत्रता और मानवीय गरिमा पर आधारित समाज के निर्माण के लिए निरंतर संघर्ष किया (बिमल प्रसाद, 1985, पृ. 319)।

भारतीय समाजवादी आंदोलन में जयप्रकाश नारायण की भूमिका

जयप्रकाश नारायण लगभग 1930 से 1954 तक भारतीय समाजवादी आंदोलन के प्रमुख वैचारिक नेता और प्रवक्ता रहे। महात्मा गांधी भी उन्हें भारत में समाजवाद का एक महत्वपूर्ण विचारक मानते थे। उन्होंने कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के संगठन, विस्तार और उसके सिद्धांतों के प्रचार-प्रसार में केंद्रीय भूमिका निभाई। उनका विश्वास था कि समाजवाद के बिना आर्थिक विषमता, शोषण और भ्रष्टाचार का उन्मूलन संभव नहीं है (वी. पी. वर्मा, 1998, पृ. 597)।

मई 1934 में कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी की स्थापना भारतीय समाजवादी आंदोलन के इतिहास की एक महत्वपूर्ण घटना थी। इस संगठन की वैचारिक रूपरेखा नासिक जेल में जयप्रकाश नारायण, अशोक मेहता, मीनू मसानी और डॉ. राममनोहर लोहिया जैसे नेताओं ने मिलकर तैयार की। समय के साथ जयप्रकाश नारायण इस दल के सबसे प्रभावशाली नेता और भारतीय लोकतांत्रिक समाजवाद के प्रमुख प्रवक्ता के रूप में स्थापित हुए (वी. पी. वर्मा, 1998, पृ. 597; वी. डी. महाजन, 1998, पृ. 346)।

उनके अनुसार आर्थिक असमानता का मूल कारण प्राकृतिक संसाधनों तथा उत्पादन के साधनों पर कुछ व्यक्तियों का निजी स्वामित्व है। जब संपत्ति और उत्पादन के साधन सीमित लोगों के हाथों में केंद्रित हो जाते हैं, तब धन का असमान वितरण, आर्थिक शोषण और सामाजिक अन्याय जन्म लेते हैं। इसलिए उन्होंने निजी संपत्ति के अत्यधिक संकेंद्रण का विरोध

किया तथा बैंकों, बड़े उद्योगों, परिवहन और व्यापार जैसे प्रमुख क्षेत्रों के राष्ट्रीयकरण का समर्थन किया, जिससे उनका लाभ संपूर्ण समाज को मिल सके (जयप्रकाश नारायण, 1936, पृ. 70; ए. के. गांधी, 2016, पृ. 101)।

जयप्रकाश नारायण का मानना था कि राज्य का पहला दायित्व प्रत्येक नागरिक की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति करना है। उनका विश्वास था कि न्याय, समानता और स्वतंत्रता पर आधारित लोकतांत्रिक व्यवस्था तभी सफल हो सकती है जब उसमें समाजवादी मूल्यों का समावेश हो। वे केवल संसदीय लोकतंत्र को पर्याप्त नहीं मानते थे, बल्कि उसे सामाजिक और आर्थिक लोकतंत्र से जोड़ना आवश्यक समझते थे। उनके अनुसार वास्तविक लोकतंत्र वही है जिसमें राष्ट्रीय संपदा का लाभ समाज के सभी वर्गों तक समान रूप से पहुँचे (वी. डी. महाजन, 1998, पृ. 346; नितीश दास गुप्ता, 1997, पृ. 77)।

एक समाजवादी चिंतक के रूप में वे विशेष रूप से किसानों और ग्रामीण समाज की समस्याओं के प्रति संवेदनशील थे। उनका विचार था कि भारतीय गाँव आत्मनिर्भर बनें तथा भूमि संबंधी कानूनों में व्यापक सुधार किए जाएँ। उन्होंने सहकारी कृषि को ग्रामीण विकास का प्रभावी माध्यम माना और कृषि उत्पादन तथा संसाधनों के सामूहिक उपयोग पर बल दिया। उनका विश्वास था कि इससे किसानों की आर्थिक स्थिति सुदृढ़ होगी तथा ग्रामीण समाज में समानता और सहयोग की भावना विकसित होगी (वी. डी. महाजन, 1998, पृ. 346)।

यद्यपि प्रारम्भिक जीवन में वे मार्क्सवादी विचारों से प्रभावित रहे, किन्तु समय के साथ उन्होंने यह अनुभव किया कि भारतीय परिस्थितियों में हिंसात्मक वर्ग-संघर्ष उपयुक्त नहीं है। इसलिए उन्होंने महात्मा गांधी के सत्य, अहिंसा और सत्याग्रह के सिद्धांतों को अपनाते हुए लोकतांत्रिक समाजवाद का समर्थन किया। उनके अनुसार समाजवाद का उद्देश्य केवल आर्थिक परिवर्तन नहीं, बल्कि नैतिक और मानवीय मूल्यों की स्थापना भी है (जगदीश पी. शर्मा एवं मिरियन शर्मा, 1982, पृ. 208; नितीश दास गुप्ता, 1997, पृ. 77)।

जयप्रकाश नारायण ने समाजवाद को स्वैच्छिक सहयोग और सामाजिक उत्तरदायित्व पर आधारित व्यवस्था के रूप में परिभाषित किया। उनके शब्दों में समाजवादी समाज वह है जिसमें व्यक्ति स्वेच्छा से अपने व्यक्तिगत हितों को समाज के व्यापक हितों के अधीन रखता है। इस परिभाषा में "स्वेच्छा" का विशेष महत्व है, क्योंकि वे किसी भी प्रकार के बलपूर्वक परिवर्तन के विरोधी थे (जगदीश पी. शर्मा एवं मिरियन शर्मा, 1982, पृ. 208)।

उनकी प्रसिद्ध पुस्तक 'व्हाय सोशलिज़्म' (1936) में आर्थिक समानता को समाजवाद का मूल आधार माना गया है। उन्होंने निजी संपत्ति को आर्थिक विषमता का प्रमुख कारण बताते हुए उसके स्थान पर सामाजिक उत्तरदायित्व और समान अवसरों पर आधारित व्यवस्था का समर्थन किया। यद्यपि प्रारम्भ में वे मार्क्सवादी समाजवाद से प्रभावित थे, किन्तु बाद में उन्होंने यह स्वीकार किया कि समानता केवल आर्थिक नहीं होती, बल्कि सामाजिक, राजनीतिक, शैक्षिक और सांस्कृतिक आयामों से भी जुड़ी होती है। इसलिए लोकतांत्रिक समाजवाद में इन सभी पक्षों के समन्वित विकास की आवश्यकता है (जयप्रकाश नारायण, 1936, पृ. 70; बिमल प्रसाद, सं., 2002, पृ. 185)।

इस प्रकार जयप्रकाश नारायण ने भारतीय समाजवाद को हिंसात्मक क्रांति के स्थान पर लोकतांत्रिक मूल्यों, नैतिकता, अहिंसा और जनसहभागिता से जोड़कर उसे भारतीय परिस्थितियों के अनुरूप नया स्वरूप प्रदान किया। उनका समाजवाद केवल आर्थिक पुनर्वितरण का सिद्धांत नहीं था, बल्कि सामाजिक न्याय, मानवीय गरिमा और लोकतांत्रिक सहभागिता पर आधारित एक व्यापक परिवर्तनकारी दृष्टि थी (बिमल प्रसाद, 1985, पृ. 319; नितीश दास गुप्ता, 1997, पृ. 77)।

निष्कर्ष

जयप्रकाश नारायण आधुनिक भारत के उन विरले राजनीतिक चिंतकों और जननेताओं में थे जिन्होंने अपने विचारों और कर्मों के माध्यम से भारतीय राजनीति को नैतिकता, लोकतंत्र और जनसहभागिता की नई दिशा प्रदान की। उनका संपूर्ण जीवन सत्ता प्राप्ति की आकांक्षा के स्थान पर लोकसेवा, सामाजिक न्याय, समानता तथा राष्ट्रीय पुनर्निर्माण के आदर्शों को समर्पित रहा। स्वतंत्रता संग्राम के एक साहसी सेनानी, समाजवादी चिंतक, सर्वोदय कार्यकर्ता और लोकतांत्रिक मूल्यों के प्रबल समर्थक के रूप में उन्होंने भारतीय राजनीतिक चिंतन को समृद्ध बनाया।

प्रस्तुत अध्ययन से स्पष्ट होता है कि जयप्रकाश नारायण का राजनीतिक दर्शन किसी एक विचारधारा तक सीमित नहीं था। प्रारम्भिक जीवन में वे मार्क्सवादी विचारों से प्रभावित रहे, किन्तु भारतीय समाज की वास्तविक परिस्थितियों और महात्मा गांधी के विचारों के गहन अध्ययन के पश्चात् उन्होंने लोकतांत्रिक समाजवाद, सर्वोदय तथा अहिंसा को सामाजिक परिवर्तन का अधिक उपयुक्त माध्यम माना। उन्होंने समाजवाद को केवल आर्थिक समानता का सिद्धांत न मानकर उसे नैतिक मूल्यों, सामाजिक उत्तरदायित्व तथा मानवीय गरिमा से जोड़कर देखा। उनके अनुसार वास्तविक समाजवाद तभी संभव है जब समाज में समान अवसर, सामाजिक न्याय, आर्थिक सुरक्षा तथा नैतिक चेतना का विकास हो।

भारतीय समाजवादी आंदोलन में जयप्रकाश नारायण का योगदान अत्यंत महत्वपूर्ण रहा। कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के संगठन और विस्तार में उन्होंने केंद्रीय भूमिका निभाई तथा समाजवादी विचारधारा को भारतीय परिस्थितियों के अनुरूप व्यावहारिक स्वरूप प्रदान किया। उन्होंने निजी संपत्ति के अत्यधिक संकेंद्रण, आर्थिक विषमता और शोषण का विरोध करते हुए उत्पादन के साधनों पर समाज के व्यापक हित को प्राथमिकता देने की वकालत की। साथ ही उन्होंने यह भी स्पष्ट किया

कि भारतीय समाज में समाजवाद की स्थापना हिंसात्मक क्रांति के माध्यम से नहीं, बल्कि लोकतांत्रिक प्रक्रिया, जनजागरण और अहिंसक संघर्ष द्वारा ही संभव है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद जयप्रकाश नारायण सर्वोदय आंदोलन से जुड़े और विनोबा भावे के भूदान तथा ग्रामदान आंदोलनों का समर्थन किया। उन्होंने ग्राम स्वराज, विकेंद्रीकरण, जनसहभागिता तथा दलविहीन लोकतंत्र को सशक्त लोकतांत्रिक व्यवस्था का आधार माना। उनका विश्वास था कि लोकतंत्र तभी सफल होगा जब शासन जनता के प्रति उत्तरदायी हो और सत्ता का वास्तविक विकेंद्रीकरण स्थानीय स्तर तक हो।

वर्ष 1974 में प्रतिपादित उनकी सम्पूर्ण क्रांति की अवधारणा सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, शैक्षिक, सांस्कृतिक और नैतिक क्षेत्रों में व्यापक परिवर्तन का आह्वान थी। आपातकाल के दौरान उन्होंने लोकतांत्रिक अधिकारों की रक्षा के लिए जनशक्ति को संगठित किया और लोकतांत्रिक मूल्यों की पुनर्स्थापना में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। उनका राजनीतिक दर्शन नैतिकता, सामाजिक न्याय, पारदर्शिता, जनसहभागिता और लोककल्याण पर आधारित था। आज के समय में भी उनके विचार सुशासन, उत्तरदायी लोकतंत्र और सामाजिक परिवर्तन के लिए अत्यंत प्रासंगिक तथा प्रेरणादायक हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. पाठक, के. एन. जेपी: ए रिबेल ऑलवेज। प्रेस इन्फॉर्मेशन ब्यूरो, भारत सरकार, नई दिल्ली, 2014।
2. महाजन, वी. डी. आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिंतन। एस. चाँद एंड कम्पनी (प्रा.) लि., नई दिल्ली, 1998।
3. गांधी, ए. के. लोकनायक जयप्रकाश की जीवनी। ओशन बुक्स प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली, 2016।
4. वर्मा, वी. पी. आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिंतन। लक्ष्मी नारायण अग्रवाल पब्लिशर्स, आगरा, 1998।
5. नारायण, जयप्रकाश. व्हाय सोशलिज़्म (Why Socialism)। ऑल इंडिया कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी, जनमंडल प्रेस, वाराणसी, 1936।
6. शर्मा, जगदीश पी., एवं मिरियन शर्मा. सर्वोदय आंदोलन और सामाजिक परिवर्तन। फर्मा के. एल. एम. प्रा. लि., नई दिल्ली, 1982।
7. गुप्ता, नितीश दास. जयप्रकाश नारायण का सामाजिक एवं राजनीतिक सिद्धांत। साउथ एशियन पब्लिशर्स प्रा. लि., नई दिल्ली, 1997।
8. प्रसाद, बिमल (सम्पा.). जेपी नारायण: आवश्यक लेखन (1929-1979)। कोणार्क पब्लिशर्स प्रा. लि., नई दिल्ली, 2002।
9. नारायण, जयप्रकाश. "सम्पूर्ण क्रांति की मेरी अवधारणा।" संदीप दास (सम्पा.), *Towards a Re-evaluation of Loknayak*।
10. प्रसाद, बिमल (सम्पा.). ए रिवोल्यूशनरी केस्ट: जयप्रकाश नारायण के चयनित लेख। ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, 1998।
11. प्रसाद, बिमल. गांधी, नेहरू और जेपी: नेतृत्व एवं विरासत पर अध्ययन। प्रोमिला एंड कम्पनी पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 1985।
12. दास, संदीप (सम्पा.). *Towards a Re-evaluation of Loknayak*।
13. राज सेबास्ती, एल. सम्पूर्ण क्रांति: जयप्रकाश नारायण के राजनीतिक दर्शन का अंतिम चरण। सत्य निलयम पब्लिकेशन, मद्रास, 1986।
14. सिन्हा, नीलिमा. जेपी। *Remembering Our Leaders*। चिल्ड्रेन्स बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली, 1990।
15. ब्रह्मानन्द (सम्पा.). *Towards Total Revolution*। पॉपुलर प्रकाशन, बम्बई, 1978।
16. 2THEPOINT। "जयप्रकाश नारायण जयंती विशेष।" समाचार रिपोर्ट, 12 अक्टूबर 2017।